कृषि–पूर्वी किरण

अंक : 2 वर्ष : 2016

संपादक

श्यामल कुमार मंडल कल्याण सुन्दर दास
फिरोज हासान रहमान सुव्रत कुमार राय
पार्थ प्रतिम पाल अजय कुमार सिंह

भाकृअनुप–कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंघान परिषद
भूमि विहार कम्पलेक्स, ब्लॉक–जी.बी.,सेक्टर–III
सॉल्ट लेक, कोलकाता – 700 097
वेब साईट : www.zpdkolkata.org

प्रकाशक
निदेशक, अटारी, कोलकाता

© इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री प्रकाशक की अनुमति के बिना कहीं भी प्रस्तुत करना निषेध है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण पूर्णतया संबंधित लेखक के हैं।

मुद्रक
क्लासिक प्रिंटार, 93, दक्षिणदारी रोड., कोलकाता – 700048

संपादकीय

आप सभी के प्यार, सहयोग एवं समर्थन का ही परिणाम है कि हम *'कृषि–पूर्वी किरण'* का यह दूसरा अंक आप तक पहुंचाने में सफल हो रहे है। हम आप सभी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं, आपको धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आपका यह सहयोग हमें आगे भी इसी तरह सदैव ही मिलता रहेगा। हम अपने सभी रचनाकारों से भी कृतज्ञ हैं जिनकी रचनायें हमें बराबर समय से प्राप्त हो रही हैं।

कृषि तकनीकी अनुप्रयोग संस्थान कोलकाता उन्नत कृषि के विभिन्न वैज्ञानिक शोध के उपलब्धियां प्रयोगशाला से लेकर कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से साधकों/हितधारकों तक उनके आपने भाषा में पहुंचाने के लिए निरंतर प्रयास कर रहे हैं। इस दिशा में *'कृषि–पूर्वी किरण'* पत्रिका का प्रथम अंक का प्रकाशन का शुभारम्भ एक अहम प्रयास था, जो कि पिछले साल हुआ था। पत्रिका के इस अंक के माध्यम से क्षेत्र–2 के कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किए गए आधुनिकतम कृषि तकनीकों की सफलतापूर्वक प्रयोग की कहानियॉ, सफलता गाथाएं आदि किसानों तक पहुंचाने का प्रयास किया गया है। हमारी यह कोशिश रही है कि हर आलेख के रचनाकारों के योगदान सही रूप से प्रतित हो। परन्तु यदि कोइ गलती रह जाए तो वह नितान्त अनिच्छाकृत है। इस अंक में तकनीकी आलेख के साथ–साथ कुछ लोकप्रिय आलेख भी दिए गए है।

हम संस्थान के पूर्व निर्दशक डॉ. अजय कुमार सिंह तथा वर्तमान प्रभारी निर्दशक डॉ. सुव्रत कुमार राय का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं जिनका सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें सतत प्राप्त होता रहा है। *'कृषि–पूर्वी किरण'* के यह दूसरा अंक का प्रकाशन में संस्थान के वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ–साथ अनुबंध पर कार्यरत सभी कर्मियों का पूर्ण योगदान रहा है। हम उन सभी के आभार व्यक्त करते हैं। *'कृषि–पूर्वी किरण'* के प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों के भी आभारी हैं।

आपके महत्वपूर्ण सुझावों का भी हमेशा ही प्रतिक्षा रहेगी ताकि भविष्य में इस प्रकाशन को और भी बेहतर बनाया जाए। हम पुनः सभी शुभचिन्तकों, लेखकों एवं सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए पत्रिका का इस अंक का सफलता कामना करते हैं।

ढेरों शुभकामनाओं सहित,

कोलकाता
जनवरी 2016

संपादक

साख बनाने में बीस साल लगते हैं और उसे गंवाने में बस पांच मिनट। अगर आप इस बारे में सोचेंगे तो आप चीजें अलग तरह से करेंगे।

– वॉरेन बफे

विषय-सूची

क्र. सं.	लेख शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1	न्यून लागत के संधारणीय मृदा प्रबंधन विकल्प – कृषि विज्ञान केन्द्र की पहल	नारायण चंद्र साहू एवं इंद्रनील दास	1
2	आर्थिक समृद्धि के लिए समेकित कृषि प्रणाली : समय की माँग	राकेश कुमार	11
3	मखाना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक	प्रवीण कुमार द्विवेदी	14
4	पपीता की वैज्ञानिक खेती	रामनिवास सिंह, संजय कुमार सिंह एवं विद्यापति चौधरी	18
5	जैविक खाद का उत्पादन – टिकाऊ जैविक कृषि एवं रोजगार सृजन की दिशा में एक कदम	संजय दास	23
6	गोंत्रा समवाय कृषि उन्नयन समिति – सहकारिता आंदोलन में अग्रणी	के. के. गोस्वामी	27
7	मक्का की खेती अररिया के लिए वरदान	पंकज कुमार सिन्हा	35
8	कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता वृद्धि में कृषि विज्ञान केन्द्र की भूमिका	ए. के. मैती	42
9	गन्ने में समेकित रोग प्रबंधन	एस. एन. सिंह	47
10	बालू आच्छादित क्षेत्रों में कृषि विकास की संभावनायें	एस. के. चौधरी	52
11	रोहतास जिला में फसल अवशेष प्रबंधन	शैलवाला एवं रीता सिंह	54
12	सब्जी पौध उत्पादनः एक लाभकारी व्यवसाय	अभिषेक प्रताप सिंह एवं हेमंत कुमार	59
13	दलहनी फसलों में अमरलताः एक समसामयिक अध्ययन	विनीता रानी एवं बी० डी० सिंह	63
14	ओल उत्पादन से मुंगेर जिले के किसानों में समृद्धि	जी. आर. शर्मा	65
15	ग्रामीण क्षेत्रों में भी हैं रोजगार के अवसर	पंकज कुमार, रमा कांत सिंह एवं सुरेन्द्र बहादुर सिंह	68
16	गन्ना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक	राजेन्द्र प्रसाद	71
17	गेहूँ एवं धान की शुन्य जुताई पद्धति से खेतीः खर्च कम पैदावार ज्यादा	के0 के0 झा एंव ए0 के0 सिंह	77
18	सहभागी धान – गया जिले के लिए वरदान	सुरेन्द्र चौरसिया, गोविन्द कुमार एवं रणजीत कुमार	82
19	कम लागत वाले दूध छुड़ाने वाले खाद्य (Weaning Food) का प्रोन्नयन	विकाश राय	86
20	वर्मी बैग का उपयोग करके वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन	प्रबीर कुमार गांगूली	89
21	कृषि एवं ग्रामीण विकास में कृषि विज्ञान केन्द्र का योगदान	शम्भु राय	90
22	मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धनः आधुनिक कृषि का महत्वपूर्ण आयाम	विनोद कुमार	94

इस मिट्टी में कुछ अनूठा है, जो कई बाधाओं के बावजूद हमेशा महान आत्माओं का निवास रहा है।

– वल्लभभाई पटेल

न्यून लागत के संधारणीय मृदा प्रबंधन विकल्प - कृषि विज्ञान केन्द्र की पहल

नारायण चंद्र साहू एवं इंद्रनील दास

'सश्य श्यामला' कृषि विज्ञान केन्द्र, नरेन्द्रपुर, दक्षिण 24 परगना (पश्चिम बंगाल)

सस्टेनेबिलिटी (संधारणीयता) शब्द लेटिन शब्द *सस्टिनर* से लिया गया है (जिसमें '*टिनर*' का तात्पर्य है 'धारण' और '*सस*' का तात्पर्य है 'करना')। इस प्रकार 'सस्टेनबिलिटी' का अर्थ है, किसी चीज को संधारित व 'कायम रखना', 'समर्थन करना' और 'टिकाऊ करना' (ओनियन, 1964) साधारण परिभाषा में ''अनुकूल पारिस्थितिकियों को समर्थन देने के निर्वहन का अनुपालन करते हुए संधारणीयता मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार ला रही है'' (आईयूसीएन/यूएनईपी/डब्ल्यूडब्ल्यूएफ, 1991)। मृदा संधारणीयता को उन अनेक प्राकृतिक नियमों द्वारा परिभाषित किया जा सकता है जो संधारणीयता को अभिशासित करती है और जो किसानों, बागवानी उद्यमियों एवं गृह बागवानों को निम्नलिखित के संबंध में ऐसे कार्य करने में सहायता करती कि क्या सही है (एंथोनी 2000) जैसे :–

i) संधारणीयता न तो मृदा क्षय और न ही भूमि के निम्नीकरण को स्वीकार करती है, यह चिरस्थाई है।
ii) संधारणीयता में अनुप्रवण पर्यावरण, नम भूमि नदियां, झीलें और सागर शामिल होते हैं।
iii) मृदा उर्वरता हमेशा ही मृदा जीवाणुओं और भूमि पर विद्यमान वनस्पतियों में अभिग्रहित होती है।
iv) जितने अधिक मृदा समजीवजात होंगे उतने ही अधिक जीवित पादप उत्तक होंगे और जितने ज्याद जीवित पादप उत्तक होंगे उतनी ही अधिक भूमि की उर्वरता होगी।
v) कम से कम अंतरालों में पोषण डालते रहने से भूमि की उर्वरता कायम रहती है।
vi) पादपों मे तत्वों का औसत मिश्रण मृदा के समजीवजात (बायोटा) के बराबर होना चाहिए।

संधारणीय मृदा प्रबंधन

विश्व जनसंख्या में वृद्धि, कृषि योग्य भूमि का गैर-कृषि प्रयोगों में परिवर्तन, भूमि निम्नीकरण और मरूस्थलीकरण से प्रति व्यक्ति भूमि क्षेत्र में तेजी से कमी आ रही है। वर्ष 1950 में वैश्विक प्रति व्यक्ति भूमि क्षेत्र 0.45 हे., 1970 में 0.35 हे., 1990 में 0.28 हे. और वर्ष 2000 में 0.22 हे. था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि धीरे–धीरे वर्ष 2050 में यह गिरावट 0.15 हे. तक पहुंच जाएगी। भारतवर्ष में, प्रति व्यक्ति भूमि क्षेत्र ढ0.1 हे. है। प्रतिव्यक्ति भूमि क्षेत्र के यह अनुमान इस धारणा पर आधारित हैं कि न तो कृषि योग्य भूमि का गैर–कृषीय प्रयोग में अतिरिक्त परिवर्तन किया जाएगा और न ही भूमि निम्नीकरण/ मरूस्थलीकरण की वजह से भूमि के परित्याग किया जाएगा। तथापि, विकासशील देशों (उदाहरण के तौर पर भारत) में भूमि निम्नीकरण और शहरीकरण में प्रति व्यक्ति भूमि क्षेत्र का परिवर्तन किए जाने की समस्याएं काफी गंभीर हैं। इसलिए निश्चित मृदा संसाधनों वाले देशों के लिए जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं (जैसे भोजन, चारा,

रेशा और ईंधन) को निम्नीकृत मृदाओं के पुनर्नवीकरण और ऑफ–फार्म निवेशों (जैसे उर्वरक, जल, ऊर्जा) के प्रयोग द्वारा भूमि की प्रति इकाई उत्पादकता में बढ़त के माध्यम से पूरा करना होगा।

इसके अलावा, विकासशील देशों में खेतिहर समुदायों में संसाधन की कमी वाले और छोटे पैमाने (<2 हे.) के भूमि धारक सम्मिलित हैं जो बहुत कम या बिना ऑफ–फार्म इनपुट के साथ निष्कर्षणीय खेती प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हैं। इसलिए मृदा गुणवत्ता में न्यूनीकरण प्रेरित ह्रास से फसल उत्पादन और कृषि आर्थिकी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संसाधन की कमी वाले किसानों के लिए न तो उर्वरक और अन्य भूमि पुनर्नवीकरण उपलब्ध हैं और न ही वे उनकी प्रभावकारिता के बारे में जानकारी रखते हैं। मृदा गुणवत्ता का कृषि आर्थिक उत्पादकता, इनपुट की प्रयोग सक्षमता और वैश्विक खाद्य सुरक्षा पर जोरदार प्रभाव पड़ता है। प्रति व्यक्ति भूमि क्षेत्रफल, भूमि निम्नीकरण की तीव्रता और उसकी सीमा व परिधि में वृद्धि तथा अनुमानित वैश्विक तापमान में वृद्धि के साथ मृदा गुणवत्ता पर खाद्य सुरक्षा की निर्भरता का बढ़ने की संभावना है।

भूमि स्वास्थ्य की संधारणीयता के लिए कृषि विज्ञान केन्द्रों (केवीके) का हस्तक्षेप

क. मृदा स्वास्थ्य के बारे में किसानों का निर्धारण

ग्रामीण भागीदारी मूल्यांकन के माध्यम से किसानों से ये निर्धारण प्राप्त हुए हैं :–

i) बढ़ते हुए रासायनिक निविष्टियों के बावजूद फसलों की उपज में अस्थिरता
ii) फसलों में रोगों/ नाशीजीवों का बढ़ता आपतन व प्रकोप
iii) रासायनिक उर्वरक के बिना फसलों का कमजोर विकास
iv) जलवायु की मार से फसलों की बढ़ती भेद्यनीयता
v) जुताई और अंतर कृषि कार्य की समस्यायें
vi) कमजोर दलहन विकास और ग्रंथि विन्यास
vii) असंतुलित रासायनिक उर्वरीकरण

ख. मृदा स्वास्थ्य के बारे में केवीके के वैज्ञानिकों का निर्धारण

इन्हें वैज्ञानिकों द्वारा ग्रामीण भागीदार मूल्यांकन और फील्ड प्रेक्षण के माध्यम से प्राप्त अनुभवों तथा भूमि परीक्षण के आधार पर किसानों के निर्धारण के लिए तैयार किया गया है।

i) रासायनिक निविष्टियों, जैसे–अंतर्निहित मृदा जैविक पदार्थ का अभाव, मृदा परीक्षण लाभों के बारे में बिलकुल भी जानकारी न होना या कम जानकारी होना, मृदाओं में पोषणों, विशेष तौर पर द्वितीयक और सूक्ष्म पोषकों का अभाव के लिए सुधारात्मक विकल्पों का उपलब्ध न होने के कारण उपज में अस्थिरता।
ii) फसलों में रोग/नाशीजीवों के आपतन में बढ़त–पादप पोषणों, मृदा पुनर्नवीकरण रसायनों का असंतुलित प्रयोग।

iii) रासायनिक उर्वरकों के बिना फसलों की कमजोर वृद्धि–भूमि जैविक सामग्री और खाद्य मिट्टी का अभाव–मृदा लाभकारी जिवांशों का अभाव, जैव उर्वकर अनुप्रयोग की बिलकुल भी जानकारी न होना।

iv) जलवायु की मार से फसलों की बढ़ती भेद्यनीयता.पोषकों के प्रयोग का असंतुलित प्रयोग और अनुचित प्रबंधन प्रक्रियाएं।

v) जुताई और अंतर कृषि कार्यों की समस्यायें–भूमि और जल संरक्षण प्रक्रियाओं का अभाव।

vi) लेग्यूम्स के बिना चालव आधारित फसलीकरण अनुक्रम में रूचि–फली की कृषि बहुत कम की जाती है और यदि की भी गई तो न्यूनतम प्रबंधन से की जाती है।

vii) मृदा स्वास्थ्य और संतुलित उर्वरीकरण के संबंध में किसानों की बीच कम जागृति।

ग. केवीके के जरिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए मृदा संधारणीय प्रबधंन हेतु प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप

i) प्रशिक्षण कार्यक्रमों, विशिष्ट प्रदर्शन (एफएलडीज) तथा फार्म स्थानिक फार्म परीक्षण प्रयोगों (ओएफटी) और फील्ड दिवसों के जरिए मृदा स्वास्थ्य के महत्त्व के बारे में बढ़ती हुई जागृति।

ii) मृदा प्रशिक्षण के महत्व के बारे में बढ़ती हुई जागृति और फील्ड में संतुलित पादप पोषणों की मृदा परीक्षण आधारित अनुशंसा का कार्यान्वयन।

iii) फसल अवशेष प्रबंधन, हरी खाद और खादों के बाह्य अनुप्रयोग के जरिए जैविक सामग्री का पुनर्वातन करते हुए किसानों को जैविक निविष्टियों के लिए प्रोत्साहित करना।

iv) उचित प्रबंधन प्रक्रियाओं के साथ फसलीकरण अनुक्रम में फलों की खेती शुरू करना

v) फसलों में नाशीजीव संक्रमण रोगों को नियंत्रित करने के लिए नाइट्रोजन का विवेकशील प्रयोग और अन्य आवश्यक पोषकों, मृदा सुधार रासायनों का प्रयोग।

vi) फसलों में जैव–उर्वरकों का प्रयोग और इसके लाभकारी प्रयोग के बारे में जागृति बढ़ाना।

vii) उन्नत कृषि उपकरणों, जैसे सीड ड्रिल, जीरो टिलेज मशीन आदि के प्रयोग से और इसके बिना उचित भूमि और जल संरक्षण विकल्पों को अपनाना।

viii) उपरोक्त बिंदुओं के अलावा, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उच्च उत्पादनकारी और गुणवत्तायुक्त किस्मों को अपनाना।

मृदा संधारणीयता और स्वास्थ्य हासिल करने के विभिन्न तरीके और उपाय

दक्षिण दिनजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र में कार्य करने के दौरान प्राप्त किए गए लेखकों के अनुभव इस प्रकार हैं:–

क. प्रयोगात्मक मृदाओं में अभिज्ञात अम्लता के संभाव्य कारण

दक्षिण दिनजपुर जिले की मृदाओं की पीएच रेंज 4.9 से 5.3 की अम्लता के अंतर्गत पाई गई। इसके अलावा, मृदा में अन्य दृश्य लक्षण भी देखे गए जिनसे मृदा की अम्लता की पुष्टि की गई। मृदा के ऊपरी भाग में 10.15 से. मी. की जलोढ़ परत देखी गई और इस परत के नीचे संपूर्ण भूभाग पूरी तरह से लोहे (फेरस प्रकृति) से ग्रस्त था और मृदा का रंग लाल नारंगीदार था। संभाव्यत:, इन मृदाओं में अम्लता

का यही एक कारण है। इसके अलावा, दक्षिण दिनजपुर भारी वर्षा वाले क्षेत्र के अंतर्गत आता है (वार्षिक वर्षा 1750–1800 मि.मि.) जिसमें कुल 91 वर्षा दिवस होते हैं जिसकी वजह से मृदा के मूलों से व्यापक निक्षालन है। साथ ही, सिंचाई का जल भी पूरी तरह से लोह तत्वों से ग्रस्त हो गया था जिससे अम्लता और अधिक बढ़ जाती है।

यह जानना रूचिकर है कि एसएमपी बफर विधि द्वारा इन मृदाओं की चूना आवश्यकताओं का निर्धारण करते समय, एसएमपी बफर विधि एलआर मूल्य निर्धारित करने में असफल रही क्योंकि इन मृदाओं में इसका रेंज 5.9 से 6.2 थी। तथापि, वूडरफ प्रणाली एक सफल प्रणाली थी। एसएमपी बफर विधि की इस असफलता का कारण था उच्च मात्रा में मिट्टी का होना तथा लोहे की उच्च मात्रा की वजह से इन मृदाओं में प्रतिरोधकता और अधिक बढ़ गई, जो वास्तव में इस प्रणाली एक कमी थी।

ख. किसानों द्वारा उर्वरकों के प्रयोग का निर्धारण

इस अध्ययन के लिए जान बूझकर दक्षिण दिनजपुर के तीन ब्लॉकों नामतः बलूरघाट, कुमारगंज और तपन का चयन किया गया और पुनर्स्थापन तकीनकों के बिना यादृच्छिक नमूनाकरण द्वारा इन ब्लॉकों में से प्रत्येक ब्लॉक से दो से चार गांवों का चयन किया गया जो सीमांत और छोटे किसानों की श्रेणी के प्रत्युत्तरों (n=140) को दर्शाता है। इस सर्वेक्षण से छोटे और सीमांत किसानों में उर्वरकों के उपयुक्त मिश्रण के प्रयोग के बारे में जानकारी की कमी पाई गई। इस प्रकार के अनुपयुक्त उर्वरक मिश्रण की वजह से किसानों द्वारा नाइट्रोजन और पोटेशियम का अधिक प्रयोग किया जाने लगा। अनेक फसलों में एक उर्वरक मिश्रण की तुलना में मिश्रित उर्वरकों को प्राथमिकता दी गई। मिश्रित उर्वरक की वजह से अनुप्रयोग में असंतुलन आ जाता है। कभी–कभी पोषण निर्धारित मात्राओं से कम और कभी अधिक मात्रा में पाए गए। अपर्याप्त जानकारी और अपर्याप्त भूमि परीक्षण आधारित अनुशंसा कार्यक्रम उर्वरकों के दुरूपयोग के लिए जिम्मेदार हो सकते हैं। बाजार की उपलब्धता और उर्वरकों के मूल्यों की अनियमितता अन्य ऐसे कारण थे जिन्होंने किसानों को डीएपी जैसे अधिक कीमती उर्वरक को खरीदने के लिए मजबूर कर दिया जिसकी वजह से उन्हें भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा। एनपीके प्रयोग अनुपात ने प्रति हे. पोषण उपभाग का असंतुलन इंगित किया (क्योंकि यह अनुपात मानक एनपीके अनुपात अर्थात 2:1:1 से कम था)। जिलों के साथ ब्लाक की उत्पादकता स्तरों और राज्य की उच्चतम उत्पादकता के साथ समग्र जिला उत्पादकता में आए अंतर ने संतुलित उर्वरक के अधिक प्रयोग के जरिए अच्छी फसल प्राप्त करने की संभावना को इंगित किया, बशर्ते कि अन्य प्रतिबंधों का ध्यान रखा जा सके। इस संबंध में भूमि परीक्षण आधारित अनुशंसा बहुत जरूरी है जिसके बाद उर्वरक मिश्रण, मात्रा, उर्वरक पोषण आदि की विधि और उसके परिकलन के संबंध में किसानों की जानकारी का उन्नयन करना आवश्यक है।

इसका विस्तार विभिन्न विस्तार कार्यकलापों जैसे प्रशिक्षण, प्रदर्शन आदि के नियमित कार्यान्वयन के जरिए किया गया ताकि उर्वरक के संतुलित प्रयोग के माध्यम से फसल उत्पादन को संधारणीयता को कायम रखने के साथ-साथ इस श्रेणी के किसानों के उत्पादकता स्तरों को बढ़ाया जा सके।

ग. खाद्य सुरक्षा हासिल करने के लिए मृदा स्वास्थ्य संधारण करने हेतु केवीके में विभिन्न प्रबंधन विकल्पों का अंगीकरण

फसलों में मृदा परीक्षण आधारित पोषण

मृदा परीक्षण से मृदा स्वास्थ्य का निदान करने और मृदा विशिष्ट और फसल विशिष्ट निराकरणों को विकसित करने में सहायता मिलती है। इससे समस्याग्रस्त मृदाओं, उनकी पोषणात्मक स्थिति, गठन और संरचना को निर्धारित करने में सहायता मिलती है। कुषि को अधिक उत्पादक और संधारणीय बनाने के लिए किसानों को विश्लेषण के आधार पर खादों, उर्वरकों और सुधारों के उचित प्रयोग के जरिए भूमि उर्वरता प्रबंधन की सलाह दी जाती है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा, पोषणात्मक सुरक्षा, मृदा स्वास्थ्य का अनुरक्षण, मृदा उर्वरता के संवर्धन को सुनिश्चित करने और भावी पीढ़ी के लिए उत्तम धरोहर छोड़ने के लिए मृदा परीक्षण किया जाना अपरिहार्य हो जाता है।

तथापि, सरकारी और निजी पहलों द्वारा सृजित की गई मृदा परीक्षण सुविधाएं बहुत ही कम हैं। इसके अतिरिक्त, इस संबंध में किसानों की जागरूकता भी नाममात्र के बराबर है। इसलिए अभी तक मृदा परीक्षण अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ है। भा.कृ.अनु.प. ने केवीके में मृदा और जल परीक्षण प्रयोगशालाएं स्थापित करने के लिए पहल शुरू की है परंतु जनशक्ति के अभाव के कारण केवल कुछ ही केवीके के अलावा, अन्य केवीके उचित ढंग से कार्य नहीं कर पा रहे हैं। केवीके किसानों के लिए परीक्षण और जागृति वृद्धि कार्यक्रमों हेतु मृदा नमूनों के एकत्रीकरण, किसानों के खेतों से मृदा नमूनों के एकत्रीकरण, उनके विश्लेषण और मृदा स्वास्थ्य कार्ड आदि के जरिए किसानों को विशिष्ट अनुशंसा प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर रहे हैं।

घ. संतुलित पोषण और नाशीजीव रोग नियंत्रण के लिए लीफ कलर चार्ट के जरिए नाइट्रोजन अनुसूचीकरण

पारंपरिक प्रक्रियाओं में एक लक्षित उत्पादन हासिल करने के लिए अपेक्षित नाइट्रोजन का पता या तो मृदा नाइट्रोजन की आपूर्ति में अंतर या खड़ी फसल की बदलती मांग पर विचार किए बिना अतिरिक्त नाइट्रोजन के प्रति फसल प्रतिक्रियाओं के आधार पर लगाया जाता है। फासफोरस और पोटेशियम अनुप्रयोग की तुलना में नाइट्रोजन के अनुप्रयोग में कुछ भी शेष नहीं बचता है। जैसाकि नाइट्रोजन के अनुप्रयोग से पत्तियों के हरे रंग को बढ़ावा मिलता है (जो किसानों के लिए अच्छी फसल स्वास्थ्य का संकेत देता है)। इसलिए, वे अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग करते हैं जिसकी वजह से नाशीजीव और रोग संक्रमण बढ़ जाता है और आखिरकार फसल उत्पादन को नुकसान पहुंचता है। लीफ कलर चार्ट में प्लास्टिक की बनी पत्तियां होती हैं जिनमें विभिन्न नाइट्रोजन स्तरों की चावल की पत्तियों का समतुल्य रंग विद्यमान होता है।

जिला दिनाजपुर के तपन ब्लॉक के गांवों में एक प्रयोग किया गया जिसमें यह पाया गया कि किसानों की क्रियाओं की तुलना में एलसीसी आधारित नाइट्रोजन अनुप्रयोग के साथ संयोजित पी एंड के आधारित

मृदा परीक्षण ने 11.5 प्रतिशत अधिक उत्पादन दिया। यह भी पता चला कि एलसीसी आधारित नाइट्रोजन अनुप्रयोग से मृदा परीक्षण आधारित नाइट्रोजन की तुलना में अतिरिक्त उपज (1.2 प्रतिशत) प्राप्त की गई। सामान्य तौर पर एलसीसी आधारित आर्थिक लाभ उत्पादित किया गया।

ङ. मृदा स्वास्थ्य के संधारण के लिए फसलों में समेकित पोषण प्रबंधन

यदि खरीफ में चावल की खेती हरी खाद और संतुलित उर्वरक अनुप्रयोग के साथ की जाती है तो अच्छे लाभ के साथ-साथ भूमि स्वास्थ्य का अनुरक्षण भी संभव हो सकता है। अनुशंसित मात्रा की तुलना में हरी खाद के जरिए खरीफ की पैदावार में लगभग 7.7 प्रतिशत की बढ़त और जबकि किसानों की क्रियाओं की तुलना में उर्वरकों की अनुशंसित मात्राओं में 13.4 प्रतिशत की बढ़त पाई गई।

किसानों को हरी खाद की फसल को गलाने के लिए पर्याप्त जल प्राप्त करने की समस्या का सामना करना पड़ता है। वर्तमान परिवर्तनशील मौसम के माहौल में यह समस्या और भी गंभीर हो गई है। इसके लिए, प्रत्यक्ष बुवाई वाले ऊपरी भूमियों में चावल की खेती के लिए किसानों को भूरी खाद की भी सलाह दी जा रही है। इसे लाभप्रद और प्रभावकारी पाया गया है।

च. बाह्य जैव उर्वरकों का प्रयोग और लेग्यूम (फली) में उत्पादकता संवर्धन और मृदा स्वास्थ्य अनुरक्षण के लिए लाइमिंग

पश्चिम बंगाल के चयनित अम्लीय मृदाओं में *विगना मुंगो* एल. की उत्पादकता बढ़ाने हेतु अध्ययन करने के लिए किसानों के खेतों के साथ-साथ (ऑन फार्म परीक्षण–ओएफटी) दक्षिण दिनजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र के अनुदेशात्मक फार्म (ऑन स्टेशन परीक्षण - ओएसटी) में एक अध्ययन किया गया। राइजोबिअम के साथ लाइम लेपित बीज उपचार के साथ किए गए उचित एनपीके अनुप्रयोग से किसानों को क्रियाओं की तुलना में 34.5 प्रतिशत अधिक उत्पादन बढ़ाया जबकि, मृदा में अतिरिक्त लाइम की वजह से 30 प्रतिशत अतिरिक्त उत्पादन बढ़ा। लाइम के अनुप्रयोग, संतुलित उर्वरीकरण, राइजोबिअम बीज उपचार के माध्यम से चने में, ओएसटी और ओएफटी में सार्थक रूप से अधिक उत्पादकता प्राप्त की गयी (क्रमशः 94.6 प्रतिशत और 64 प्रतिशत), जबकि काला चना में न्यूनतम क्रियाओं के साथ लाइम लेपित रिजोबिअम के जरिए सर्वोत्तम आर्थिक लाभ प्राप्त किए गए।

छ. जैविक खाद उत्पादन और अनुप्रयोग के माध्यम से मृदा प्रबंधन

I. मृदा स्वास्थ्य अनुरक्षण के लिए वर्मीकंपोस्ट का प्रयोग

वर्मीकम्पोस्टिंग एक कम लागत की प्रौद्योगिकी है जो पर्यावरण अनुकूलन है और जैविक अपशिष्ट का उपचार करने के लिए प्रयोग की जाती है। वर्मी कंपोस्ट के परिणामी प्रयोग से पादप वृद्धि और स्वास्थ्य में अनेक सकारात्मक प्रभाव पड़े हैं। इसलिए यह जैविक उर्वरक कृषि और बागवानी में अजैविक उर्वरकों और/या हरितगृह के पॉटिंग मीडिया में पीट के लिए एक आशाजनक विकल्प समझा जाता है। डीआरडीए की सहायता से वर्मी कम्पोस्ट उत्पाद और स्व-सहायता समूह (एसएचजी) और ग्रामीण युवाओं में इसके

प्रयोग के संबंध में केवीके में अनेक प्रशिक्षण और प्रदर्शनियां आयोजित की गई। हमने न्यून लागत की वर्मी कंपोस्टिंग तकनीकों पर विशेष रूप से जोर दिया और जिन्होंने सफलतापूर्वक इस न्यून लागत वाली तकनीकों को अपनाया और जिनके पास आर्थिक समर्थन है, उन्हें मध्यम तकनीकों से उच्च लागत की तकनीकों को अपनाने की सलाह दी गई। उन्हें बैंको ने लीड बैंक और नाबार्ड की सहायता से ऋण देकर सहायता की। अब इस समय एसएचजी क्षरा वर्ष में लगभग 500 टन वर्मी कंपोस्ट उत्पादित किया जाता है।

II. जैव उर्वरक के रूप में चावल के खेत में देशी अजोला का प्रयोग

पर्यावरण के संरक्षण के बारे में बढ़ते सरोकारों और पुनर्नवीकरण, संधारणीय संसाधनों को उपलब्ध कराने की आवश्यकता की वजह से, महत्त्वपूर्ण पोषक नाइट्रोजन का प्राकृतिक स्रोत प्रदान करने के लिए कृषि फसलों में, जैव उर्वरक के रूप में, *अजोला* का अनुप्रयोग मृदा संधारणीयता और उत्पादकता के लिए बहुत लाभप्रद हो सकता है। इसके आलवा, विश्व के अनेक भागों के बहुसंख्यक किसानों, जो रासायनिक उर्वरक का भार वहन नहीं कर सकते हैं, के लिए *अजोला पिन्नाटा* के पर्यावरणीय उपयुक्तता से उनकी आर्थिक स्थिति में वृद्धि हो सकती है, पैदावार बढ़ सकती है और लागत में कमी आ सकती है। चूंकि चावल के खेत अजोला के लिए आदर्श पर्यावरण तैयार करते हैं, इसका सबसे उपयुक्त अनुप्रयोग चावल में होता है। अजोला कृषि की वजह से इन मृदाओं में चावल की पैदावार 3 प्रतिशत से लेकर 5 प्रतिशत तक बढ़ गई। विशेष तौर पर चावल की खेती के तहत अजोला को किसानों के खेतों में तिरछा बोने के पश्चात यह देखा गया कि चावल के खेत में देसी अजोला छुट–पुट रूप से उग रहा था। किसान इसे प्रायः चावल के खतों से उखाड़ कर फेंक देते हैं। अजोला अक्सर मृदा की अम्लता और प्रतिकूल जलवायु परिस्थिति की वजह से नष्ट हो जाता है। नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत भी अजोला को अलग से बढ़ाना कठिन था। कुछेक प्रयोगों के पश्चात अजोला को सफलतापूर्वक चावल के खेतों में उगाया जा सका। विचार किए जाने वाले महत्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं:–

- अम्लीय मृदा परिस्थिति के अंतर्गत *अजोला पिन्नटा* का छुट–पुट मास तेजी से नष्ट हो जाता है।
- अजोला की अधिक मात्रा में बोया जाना चाहिए।
- चावल के अम्लीय खेतो से एकत्रित किए गए देसी अजोला को सामूहिक रूप से उगाया जाना चाहिए।
- मृदा के पीएच को स्थिर रखने के लिए एलआर के एक तिहाई आधार पर लाइम का अनुप्रयोग।
- अच्छी फसल वृद्धि के लिए मृदा के पीएच और एसएसपी उर्वरक को स्थिर रखने के लिए लाइमिंग के पश्चात जैविक खाद का अनुप्रयोग।
- अजोला को सामूहिक रूप से निकालना।
- ये विधियां *अजोला माइक्रोफिला* जैसी *अजोला* की अन्य प्रजातियों के लिए भी लागू हैं।

III. मृदा स्वास्थ्य अनुरक्षण के लिए जल हायासिंथ समृद्ध कंपोस्ट का प्रयोग

इस समृद्ध कंपोस्ट के उत्पादन के पीछे संकल्पना मृदा अम्लता सुधार और फॉसफेट अल्पता में सुधार पर आधारित थी। यह पाया गया कि मृदा और तालाब के जल में लाइमिंग की वजह से मृदा/

जल में लम्बे समय तक पीएच कायम नहीं रह सका। तालाब के पानी के मामले में पीएच अवसाद और जैविक सामग्री भार कैलसियम धारण के लिए अनुकूल नहीं है, इसलिए लाइम अनुप्रयोग के एक महीने के पश्चात ही पीएच कम हो जाता है। इसलिए, ऐसे जैविक सामग्री की आवश्यकता महसूस की गयी जिसे जब कभी मृदा या पानी में अनुप्रयुक्त किया जाए तो यह कैलसियम को धारण कर सके। मृदा अम्लता की वजह से, इन मृदाओं में फास्फेट जमा हो जाता है। इसलिए जैविक सामग्री में अतिरिक्त एसएसपी मिलाने से फसलों में फास्फेट की आपूर्ति हो जाती है। इस कंपोस्ट के लिए जल हायासिंथ पर विचार किया गया क्योंकि यह जलाशयों और दलदली निम्न भूमियों में प्रचुर मात्रा में होता है और साथ ही यह जल्दी गल भी जाता है।

समृद्ध कम्पोस्ट को जल हायासिंथ, गाय के गोबर, एक चूंटी यूरिया और लाइम से तैयार किया जाता है जिसे अम्लीय मृदाओं के लिए प्रयोग किया जा सकता है जहां मृदा में लाइम लंबे समय तक नहीं रहता है। इसके अतिरिक्त, जब कम्पोस्ट का प्रयोग तालाब में किया जाता है तो पारंपरिक प्रक्रियाओं की तुलना में मछलियों की वृद्धि आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती है। इस कम्पोस्ट से एनपीके का प्रतिशत, नाइट्रोजन 2.2 प्रतिशत, P_2O_5 1 प्रतिशत और पोटेशियम 0.75 प्रतिशत तथा कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात 22:1 होता है जो फसल की वृद्धि के लिए एक आदर्श मिश्रण है। यह पाया गया है कि तालाबों मे इस मिश्रण के अनुप्रयोग से पीएच स्तर में कमी होना बंद हो जाता है और तालाबों में मछली की उपज भी बढ़ जाती है।

IV. चावल/मक्का की फसलों के अपशिष्टों का पुनरावर्तन

फसल अपशिष्ट प्राकृतिक संसाधन हैं जो किसानों के लिए काफी कीमती होते हैं। ये अपशिष्ट पशु चारा, कम्पोस्टिंग, ग्रामीण मकानों के छाजन और घरेलू तथा औद्योगिक प्रयोग में ईंधन की तौर पर काम आते हैं। अनाज फसलों द्वारा अवशोषित 25 प्रतिशत नाइट्रोजन, 25 प्रतिशत फासफोरस, 50 प्रतिशत गंधक और 75 प्रतिशत पोटेसियम अपशिष्टों में जमा रहता है जो उन्हें पोषण के कीमती स्रोत बना देता है। तथापि, पिछली फसल के कटने के पश्चात घास–फूस और ठूंठियों को खेत से साफ करने के लिए लगभग 140 मी. टन का अपशिष्ट का एक बहुत बड़ा भाग जला दिया जाता है। यह समस्या सिंचित क्षेत्रों में विशेष तौर पर यांत्रिक रूप से की जाने वाली चावल-गेंहू की खेती की प्रणाली में, गंभीर बनी हुई है।

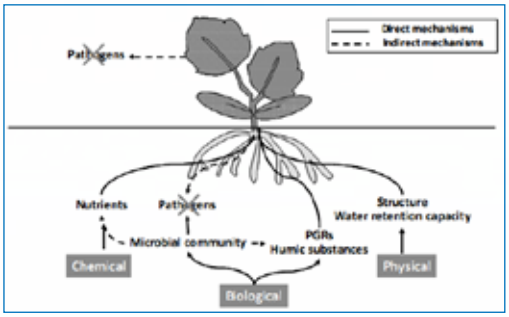

कुछ प्रस्तावित रासायनिक, जैविक एवं भौतिक विधियां, जिनसे वर्मीकम्पोस्ट प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पादप की वृद्धि और विकास प्रभावित हो सकता है।

खेतों में अपशिष्टों को जलाने का मुख्य कारण श्रमिकों का उपलब्ध न होना, अपशिष्टों को हटाने में आने वाली लागत और चावल-गेंहू फसलीकरण प्रणाली, विशेष तौर से गंगा-सिंधु के मैदानों (आईजीपी) में किए जाने वाला संयोजकों का प्रयोग है। फसलों के अपशिष्ट को जलाने से (1) सूट कण और धुंआ

निकलता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है, (2) ग्रीन हाउस गैस (जीएचजीएस) जैसे कार्बन डाइ ऑक्साइड, मिथेन और नाइट्रस ऑक्साइड का उत्सर्जन होता है जिसके कारण वैश्विक तापमान बढ़ता हैं, (3) पाद पोषकों, जैसे नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटेशियम और गंधक की हानि होती है, (4) मृदा अवयवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और (5) मूल्यवान कार्बन और ऊर्जा युक्त अपशिष्ट की बर्बादी होती है।

V. मृदा आर्द्रता और मृदा स्वास्थ्य के संरक्षण के लिए जीरो टिलेज

अधिकांश प्रकार की कृषि मृदाओं के स्वास्थ्य को छः प्रमुख विधियों से उन्नत किया जा सकता है :–'

- ✶ जोताई में कमी करके
- ✶ भूमि सघनता को दूर करके
- ✶ कवर फसलों को उगाकर
- ✶ बेहतर फसल आवर्तन बढ़ाकर
- ✶ जैविक सुधार करके
- ✶ अजैविक सुधार करके

मृदा में जैविक सामग्री को न्यनीकृत–टिलेज प्रणाली, विशेषतौर से नो-टिल, स्ट्रिप टिल और जोन–टिल, के प्रयोग से आसानी से अनुरक्षित या बढ़ाया जा सकता है। मृदा विक्षोभ की कमी जीव वैज्ञानिक गतिविधि और जैविक सामग्री के अपघटन को सतह के नजदीक रखती है जो मृदा संरचना और सघनता को बनाए रखती है जिससे वर्षा के जल का तेजी के साथ अंतःसरण हो जाता है। सतह पर अपशिष्ट छोड़ने और पलवार बनाने से मृदा की जैविक गतिविधि में जबरदस्त प्रभाव पड़ता है। ऐसा करने से केंचुओं की संख्या बढ़ जाती है, भूमि की आर्दता कायम रहती है और तापमान सामान्य बना रहता है। पारंपरिक जुताई की अपेक्षा न्यूनतम जुताई प्रणाली के अंतर्गत भू–क्षरण (जल, हवा और जुताई) काफी कम होता है जिससे जैविक सामग्री और समृद्ध उपरी भूमि को अपने स्थान पर बने रहने में मदद मिलती है। लाइनों में खरपतवार का उन्मूलन करने के लिए वीडर के साथ सीडड्रिल के लिए भी यही स्थिति होगी।

VI. जैविक खादों के पोषणात्मक हानियों के बारे में जागृति

प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से किसानों को जैविक खादों के दुरूपयोग के बुरे प्रभावों के बारे में जानकारी दी गयी थी। किसानों को खराब प्रक्रियाओं के बारे में जानकारी दी गयी जैसे :

i) खाद को खुले स्थानों/खेतों में रखा जाना

ii) मवेशियों के शेड से हानियां

iii) ईंधन के रूप में उपलों का प्रयोग करना

iv) ठूंठियों को जलाना

VII. किसानों को अच्छी प्रक्रियाओं की जानकारी दी गयी, जैसे :

i) गाय के गोबर को खड्डे में उचित ढंग से रखा जाना चाहिए।

ii) वर्मी कंपोस्ट के लिए गाय की गोबर कंपोस्टिंग की जानी चाहिए या उसका प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि गाय के गोबर को कंपोस्ट में परिवर्तित करने पर यह पाया गया कि इसमें गाय के गोबर की अपेक्षा तीन गुना अधिक पोषणात्मक संवर्धन होता है।

iii) बिना सड़ी हुई/ आंशिक तौर से सड़ी हुई जैविक खाद को खेतों में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

iv) तेल खली का प्रयोग ठीक फसलीकरण से पहले किया जाना चाहिए।

आज हमारे अन्दर बस एक ही इच्छा होनी चाहिए, मरने की इच्छा ताकि भारत जी सके! एक शहीद की मौत मरने की इच्छा ताकि स्वतंत्रता का मार्ग शहीदों के खुन से प्रशस्त हो सके।

– नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

आर्थिक समृद्धि के लिए समेकित कृषि प्रणाली : समय की माँग

राकेश कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, अरवल (बिहार)

बढ़ती जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति जोत की घटती भूमि के कारण, आज किसानों में समेकित कृषि प्रणाली तकनीकी अपनाना समय की माँग हो गयी है। समेकित कृषि प्रणाली कृषकों (विशेषकर लघु कृषकों) को खेती में आर्थिक मजबूती के साथ ही जोखिम के दायरे को कम करता है।

समेकित कृषि प्रणाली एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा प्राकृतिक संसाधनों को बचाये रखते हुए अन्य कृषि प्रणालियों से ज्यादा एवं टिकाऊ आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इस प्रणाली में लागत कम रखने के लिए एक घटक के अवशिष्ट का उपयोग दूसरे घटक में निवेश के रूप में किया जाता है। जैसे धान, गेहूँ के उपउत्पाद का उपयोग जानवरों के चारे में किया जा सकता है एवं जानवरों के गोबर का उपयोग पुनः खेती में फसल उत्पादन में किया जा सकता है। पशुपालन के साथ खेती करने से छोटे किसानों को एक ओर खेती करने के लिए पशुधन मिल जाता है तो दूसरी ओर गोबर से अच्छी कार्बनिक खाद और पशु–मूत्र से फसलों को बहुमूल्य पोषक तत्व के साथ ही फसल सुरक्षा हेतु एक बेहतरीन जैव–कीटनाशी भी मिल जाता है। गोबर के खाद से विशेष लाभ यह होता है कि रासायनिक खादों की आवश्यकता बहुत कम हो जाती है और खाद्यान्नों/ अन्य फसल उत्पाद का भंडारण क्षमता एवं स्वाद बढ़ जाता है। यदि केवल गोबर की खाद का उपयोग किया जाय तो उत्पादित फसलों की कीमत भी अधिक मिलती है और रसायन जनित बीमारियाँ नहीं होता। इसके अतिरिक्त, घर के वृद्ध, बच्चे एवं महिलाएँ सब खेती और पशुपालन के छोटे–बड़े कार्यों में हाथ बटाते हुए व्यस्त, स्वस्थ और नियोजित रहते हैं। पशुओं के गोबर से गोबर गैस प्लांट सामूहिक रूप से चलाया जा सकता है जो गाँवों में प्रकाश की व्यवस्था, आटा चक्की चलाना, चारा काटना और भोजन बनाने में सहायक होगा। साथ ही उर्जा की बढ़ती माँग एवं उँची कीमत को देखते हुए समेकित कृषि प्रणाली अपनाने से कम खर्च एवं कम लागत पर कृशि एवं अन्य आवश्यक कार्य संपादित किए जा सकते हैं। इस प्रकार खेती, पशु और किसान एक दूसरे के पूरक और सहभागी होकर कृषकों की आमदनी में वृद्धि के साथ–साथ वातावरण में प्रदूषण कम करता है तथा बेहतर जीवन–यापन सर्वसुलभ बनाता है।

समेकित कृषि प्रणाली, लघु, सीमांत एवं भूमिहीन किसानों के लिए एक आदर्श है। वैसे किसान जिनके पास घर के पिछवाड़े में या पास में जमीन का एक छोटा टुकड़ा 400–500 वर्गमीटर उपलब्ध हो उसमें एक छोटा सा तालाब बनाकर मत्स्य–सह–बत्तख पालन कर लाभ कमा सकते हैं। इसमें तालाब के चौड़े मेढ़ पर घरेलू खपत के लिए सब्जी तथा फलों की खेती कर दैनिक आवश्यकता की विभिन्न

फल–सब्जियों का उत्पादन कर इनके लिए बाजार पर निर्भरता कम कर सकते हैं। पशुपालन के लिए 100 वर्गमीटर भूमि का उपयोग कर 10 बकरी या 2 भैंस/गाय पाला जा सकता है। मवेशियों को पालने से खेती में प्रचूर मात्रा में गोबर की खाद, बकरी की खाद या वर्मी कम्पोस्ट प्राप्त हो जाती है जिससे फसल उत्पादन की लागत काफी कम हो जाती है एवं मृदा में विभिन्न पोषक तत्वों का संतुलन एवं जैविक कार्बन की उपलब्धता बनी रहती है।

कृषि विज्ञान केन्द्र परिसर पर ऐसी ही मात्स्यिकी–सह–बत्तख, बकरी तथा सब्जी एवं फलों के उत्पादन का प्रत्यक्षण मॉडल तैयार किया गया है जिसे देख जिले के कई किसानों ने इस तकनीक को अपनाया है। ग्राम असलानपुर, प्रखंड–अरवल के किसान श्री रामसनोज कुमार, समेकित कृषि प्रणाली तकनीक के तहत मत्स्य–सह–मुर्गी पालन, भैंस/गाय पालन तथा फसल उत्पादन कर अपनी आर्थिक समृद्धि को बढ़ा रहे हैं। गाँव के अन्य युवाओं ने भी इनकी सफलता को देखते हुए इस तकनीक को अपनाने की शुरूआत की है।

वैसे किसान जिनके पास दो एकड़ या इससे ज्यादा खेती योग्य जमीन है वे चारागाह पर अपनी निर्भरता खत्म कर तीन संकर गायों तथा तीन बछड़ों के लिए वर्श–भर चारा उत्पादन कर सकते हैं। गाय के रहने के लिए तालाब के बगल में तथा गाय शेड को चैनल द्वारा तालाब से जोड़कर गोशाला के अवशिष्ट को सीधे तालाब में पहुँचाया जा सकता है जिससे मछलियों को चारे की उपलब्धता बनी रहती है तथा पशुओं को धुलाई के लिए अतिरिक्त पानी की बचत हो जाती है। पूरे वर्ष चारे के लिए खरीफ के मौसम में एम0पी0 चरी, सूडान घास, बोरो लोबिया, गरमा के लिए बोरो, सूडान घास तथा मक्का एवं रबी के लिए बरसीम, जई, मक्का इत्यादि की पैदावार ली जा सकती है। इसके अतिरिक्त, बहुवर्षीय चारा फसलें जैसे एन0बी0हाईब्रीड, पूसा जैंट नैपियर का भी उत्पादन किया जा सकता है।

समेकित कृषि प्रणाली में पशुपालन (गो–पालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन, बत्तख पालन इत्यादि) एक महत्वपूर्ण घटक है। यह इस प्रणाली में नियमित आय का एक मुख्य स्रोत भी है, साथ ही इसके अवशिष्टों का फसलों में प्रयोग कर फसलों एवं सब्जियों के उत्पादन में निरन्तरता एवं हरियाली कायम रखी जा सकती है। कृषि विज्ञान केन्द्र, अरवल ने समेकित कृषि प्रणाली की महत्ता को जिले के किसानों तक पहुँचाया है। किसान श्री दिलीप कुमार, गाम–झुनाठी, प्रखंड–करपी, जिला–अरवल तथा श्री महेन्द्र कुमार, ग्राम–कयाल, प्रखंड–करपी, जिला–अरवल समेकित कृषि प्रणाली द्वारा गौ पालन, बकरी पालन, वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन तथा सब्जी एवं फसल का उत्पादन कर जिले के किसानों के लिए प्रेरणा स्रोत एवं उदाहरण बन गए हैं। श्री महेन्द्र कुमार, 2 हेक्टेयर भूमि पर जैविक फसल उत्पादन करते हैं जिसका जैविक उत्पादों के प्रमाणीकरण हेतु अधिकृत एजेन्सी 'इकोसर्ड' द्वारा पंजीकरण भी किया गया है। कृषि विज्ञान केन्द्र के तकनीकी सहयोग से इनके द्वारा 70 बकरियों के एक बड़े फार्म का संचालन किया जा रहा है जिसमें चयनित बंगाल नस्ल की बकरियों का क्रॉस जमुनापरी नस्ल बकरा से कराया गया है। इनके 'नवोन्मेशी' कार्यों के लिए वर्श 2014 में इन्हें राज्य सरकार द्वारा 'बेस्ट इन्नोवेटिव फार्मर' का पुरस्कार भी दिया गया। श्री दिलीप कुमार अच्छे संकर नस्ल की गायों का वैज्ञानिक तरीके से पालन कर शुद्ध एवं

गुणवत्तायुक्त दूध उत्पादन कर रहे हैं। पशुओं से प्राप्त गोबर एवं मूत्र का उचित संवर्धन कर फसलों में भी उपयोग किया जा रहा है। इनके द्वारा लगभग 1 क्विंटल दूध का उत्पादन प्रतिदिन होता है। इसकी बिक्री से सहकारी समिति के माध्यम से कर अच्छा लाभ भी कमा रहे हैं। इनके पास उन्नत नस्लों की 25 बकरियाँ हैं। पशुओं से प्राप्त अवशिष्ट का उपयोग खेती में तथा फसलों से प्राप्त उपउत्पाद का उपयोग पशुओं के लिए कर कम लागत में अधिक आर्थिक लाभ लिया जा रहा है। जिले के किसान इनसे आधुनिक तकनीक की जानकारी लेकर अधिक अन्न एवं दुग्ध उत्पादन तथा अधिक लाभ अर्जित करने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

अतः यह कहना आतिशयोक्ति नहीं होगी कि हमारे देश में जहाँ कि लघु एवं सीमांत कृषकों की संख्या 80 प्रतिशत से अधिक एवं तेजी से इनका अनुपात बढ़ता जा रहा है, साथ ही कुल जनसंख्या में किसानों का अनुपात कम होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में समेकित कृषि प्रणाली इनकी दैनिक खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने एवं वर्ष–भर आमदनी बनाए रखने में पूर्णतया सक्षम है। अतएव यही समय की माँग भी है।

हमेशा ध्यान में रखिये की आपका सफल होने का संकल्प किसी भी और संकल्प से महत्यपूर्ण है।

– अब्राहम लिंकन

मखाना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

प्रवीण कुमार द्विवेदी
कृषि विज्ञान केन्द्र, दरभंगा (बिहार)

मखाना का दरभंगा जिले के लिए धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक महत्व है। बेकार, जल जमाव वाली जमीन एवं तालाब में मखाना लगाने से बेरोजगारों को रोजगार और किसानों को आय प्राप्त होने के साथ ही साथ वहॉ की जल–पारिस्थितिकी भी समृद्ध होती है। इसके पूर्ण दोहन हेतु खेती के विभिन्न पहलुओं की वैज्ञानिक जानकारी किसानों कि लिए नितान्त आवश्यक है।

पोषण के घटक के रूप में मखाना का उपयोग बहुआयामी है। बिहार में बीज का मंडवाला भाग लावा के रूप में उपयोग किया जाता है। मणीपुर में कोमल एवं विकसित पत्तियों और पत्ती का डंठल सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। उपवास के समय अल्पाहार के रूप में इसका बहुप्रचलित उपयोग सर्वविदित है। मक्खन में भूने हुए नमकीन मखाना का अपना अलग ही स्वाद है।

बीज के खाने योग्य भाग में 12.8% नमी, 9.7% प्रोटीन, 0.1% वसा, 0.5% खणिज पदार्थ, 76.9% कार्बोहाइड्रेट, 1.4 मि0 ग्राम/100 ग्राम लोहा और सूक्ष्म मात्रा में कैरोटीन पाया जाता है। मखाना के लावा का कैलोरी मूल्य 328 कि0 कैलोरी/100 ग्राम दर्ज किया गया है। मखाना का प्रोटीन पादप एवं अन्य स्रोतो से प्राप्त प्रोटीन की तुलना में उत्तम होता है। आवश्यक एमीनो एसिड सूचकांक अन्य स्रोतों की तुलना मे इसमें ज्यादा हेाता है।

आयुर्वेद में इसे त्रिदोषनाशक बताया गया है। पौधे के सभी भागों में स्वास्थ्यवर्द्धक गुण पाये जाते हैं। बीज में पेट दर्द दूर करने की क्षमता होती है तथा यौन रोग में भी काफी लाभ पहुचाता है। इसमें श्वसन, परिसंचरण, पाचन, उत्सर्जन और प्रजनन संबंधी रोगों को दूर करने का औषधीय गुण पाया जाता है।

मखाना एक जलीय पौधा है। इसकी जड़ें मोटी एवं रेशेदार होती हैं। इसमें 3–5 झुंड पाये जाते है। प्रत्येक में 15 छोटी–छोटी जड़ें होती है। पत्तियॉ बड़ी, भारी और दॉतदार होती है। नीचे बैगनी और उपर हरी होती है। अधस्तलीय भाग में शिराएँ स्पष्ट दीखती है। पत्ती का पृष्ठीय भाग चिकना होता है। पत्रवृन्त कड़े और मोटे होते है।

प्रभेदीय विकास

अभी तक किसान देशी किस्मों को लगाकर 1–1.5 टन प्रति हे0 उपज प्राप्त कर रहे थे। लेकिन भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के पटना स्थित पूर्वी संभाग ने "स्वर्ण वैदेही" नाम से उच्च उत्पादकता वाली नयी किस्म जारी किया है। इसकी उत्पादकता 2.5–3 टन प्रति हे0 है। इसकी खेती तालाबों के अलावा ऐसे खेतों में भी हो सकती है जहां पानी की गहराई मात्र 30 से0मी0 है। स्वर्ण वैदेही की खेती के पश्चात गेहूँ, चना, मसूर, और सब्जियॉ भी उगायी जा सकती है।

कृषि संक्रियाओं की माहवार सारणी

महीना	संक्रियाएँ
अक्टूबर–नवंबर	20 कि0ग्रा0/हे0 की दर से बीज का बोया जाना
दिसंबर–जनवरी	बीज का अंकुरण
जनवरी–फरवरी	नये पत्ते का निकलना
मार्च–अप्रैल	मुख्य खेत में बिचड़ा की रोपणी (1.25 मी0 × 1.25 मी0)
अप्रैल–मई	बड़ी–बड़ी पत्तियॉ पूरे तालाब को ढॅक लेती है।
मई–जून	फूल खिलना शुरू होता है
जून–जुलाई	फल बनना शुरू
अगस्त–सितंबर	परिपक्व फल फट जाते हैं और तली पर बीज इधर–उधर छितरा जाते है।
सितंबर– अक्टूबर	मल्लाह के द्वारा बीज एकत्र किया जाता है।

कीट प्रबंधन

1. माहू या लाही– इसका प्रकोप दिसंबर से मार्च तक रहता है। इसके कारण पत्तियॉ पीली पड़ जाती है और सड़कर गिर जाती है। क्लोरोपाइरीफास, डाइमेथोएट, साइपरमेथरीन या क्वीनलफास की 4 छिड़काव 20 दिन के अंतराल पर करने से इसे नियंत्रित किया जा सकता है। क्लोरोपाइरीफास (2.5 मि0 ली0 /लि0 पानी) सबसे अच्छा काम करता है।

2. केस वर्म– इसका प्रकोप जनवरी–मई के बीच होता है। लार्वा कोमल पत्ती को किनारे से या बीच से चबाकर खाता है और फिर पत्ती को लपेटकर नली के आकार की बना देता है। क्लोरपाइरीफास डायमेथोएट, साइपरमेथरीन या क्वीनलफास की 4 छिड़काव 20 दिन के अंतराल पर करने से इसे नियंत्रित करने में मदद मिलती है। क्वीनलफास (4 ग्रा0/ली0 पानी) अचूक परिणाम देता है।

3. जड़छेदक– अप्रैल–जुलाई के समय पीला–भूरा प्यूपा रेशेदार जड़ से सटा हुआ जाया जाता है। यह जड़ एवं तना से अपना पोषण प्राप्त करता है। वयस्क कीट फूलों को क्षति पहुॅचाता है। पत्ती पीली हो जाती है और अंत में पूरा पौधा मर जाता है।

4. चूसक बग– यह सामान्यतः दिसंबर–मई के बीच देखा जाता है। निम्फ और वयस्क दोनों पत्ती तना जड़ एवं फल को क्षति पहुचाते है।

पर्णझुलसा रोग

इस रोग से ग्रसित पत्ती पर गहरा भूरा, अनियमित, वृत्ताकार, मृत भाग पाया जाता है। संकेन्द्रीय वलय और उभार लक्ष्यपट्टी (Target board) का आभास कराते है। गंभीर रूप से प्रभावित पत्तियॉ पूर्णतः झुलस जाती हैं। 15 दिनों के अंतराल पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (3 ग्रा0/ली0 पानी) की 3 छिड़काव रोग को काफी हद तक कम करती हैं।

कटाई एवं कटाई उपरान्त तकनीक

मखाना के बीज का एकत्रीकरण और प्रसंस्करण बहुत ही कठिन एवं श्रमसाध्य का कार्य है। इसमें अत्यधिक ध्यान, धैर्य और समय की पाबंदी बहुत ही मायने रखता है।

तालाब की पेंदी से मखाना के बीज का एकत्रीकरण अगस्त से शुरू होता है और नवंबर के अंत तक चलता रहता है। सिर्फ अनुभवी एवं सिद्धहस्त मल्लाह ही ऐसा कर पाते हैं। पूरे तालाब को 0.1 हे0 के क्षेत्रों में चिह्नित करके प्रत्येक भाग में 5–6 मल्लाह को लगा दिया जाता है। पानी के अंदर रेंगते हुए वे बीज को एक जगह जमा करके ढेर बनाते है और पहचान हेतु वहॉ पर लकड़ी गाड़ दी जाती है। वहां से गांजा की मदद से बीज को बाहर लाया जाता है। इसे पैर से कुचलकर इसमें लगी झिल्लीदार आवरण को हटाकर पानी से धोया जाता है। मखाना का उत्पादन 2.5–3 टन/हे0 आता है।

प्रसंस्करण

1. धूप में सुखाना– एक जगह से दूसरी जगह भेजने एवं अस्थायी भंडारण हेतु इसे धूप में तब तक सुखाया जाता है जबतक नमी की मात्रा 31% तक आ जाए।

2. सुखाना और ग्रेडिंग– साफ किये गये मखाना के बीज को सीमेंट के बने चबूतरे पर सुखाया जाता है। नमी की मात्रा को 25% तक लाया जाता है। लकड़ी के हथौड़े से पीटने के बाद यदि छिलका अलग हो जाता है तो इसे अच्छी तरह सूखा समझा जाता है। इसके बाद इसे 5–7 श्रेणियों में अलग कर लिया जाता है।

3. प्रषीतन– सूखे बीज को मिट्टी के बर्तन या लोहे की कड़ाही में गर्म किया जाता है। कड़ाही का तापमान 290^0–340^0 से. तक रहता है। इसमें 5–6 मिनट तक गर्म किया जाता है। अब नमी की मात्रा घटकर 20% तक आ जाती है। इसके बाद इस बीज को 45–72 घंटे तक ठंढा होने के लिए छोड़ दिया जाता है। इससे बीजावरण के अलग होने में मदद मिलती है।

4. लावा निर्माण– प्रषीतित बीज का 300 ग्राम लोहे की कड़ाही में लेकर 1.5–2 मिनट तक भूना जाता है। इस अवस्था में नमी घटकर 10–11% तक आ जाती है। 5–7 बीज हाथ से निकालकर उसे कठोर सतह या शिला पर रखकर तेजी से लकड़ी के हथौड़े से पीटा जाता है। जैसे ही बीजावरण फटता है लावा फैलकर मखाना के रूप में बाहर निकल जाता है। बीज के कुल भार का 35–42% लावा प्राप्त होता है।

5. पॉलिश, श्रेणीकरण एवं बैगिंग– लावा को बीजावरण से पूर्णतः मुक्त करने हेतु इसे आपस मे रगड़ा जाता है। इसके बाद इसे 2–3 श्रेणियों में बॉट

दिया जाता है। फिर इसे पॉलीथीन से ढँकी जूट के बोरे में डालकर थैलाबंदी कर दी जाती है।

अब मखाना प्रसंस्करण मशीन भी तैयार हो गयी है। लेकिन आम आदमी में इसका प्रचलन अभी लगभग नगण्य है और परंपरागत पद्धति से ही लावा बनायी जाती है।

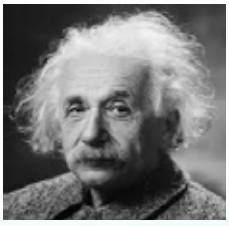

जिस व्यक्ति ने कभी गलती नहीं कि उसने कभी कुछ नया करने की कोशिश नहीं की।

– अल्बार्ट आइंस्टीन

पपीता की वैज्ञानिक खेती

रामनिवास सिंह, संजय कुमार सिंह एवं विद्यापति चौधरी
कृषि विज्ञान केन्द, बेगूसराय (बिहार)

पपीता का वानस्पतिक नाम ''कैरिका पपाया'' है और यह कैरिकेसी कुल का सदस्य है। पपीता का उद्गम स्थान मैक्सिको है जहॉ से यह अब धीरे–धीरे विश्व के सभी उष्ण तथा समशीतोष्ण देशों में फैल गया है। भारत में इसका विवरण डच यात्री लिन्सचोहन ने सन् 1576 में किया था जिसने पाया कि पपीता प्रथम वार वेस्टइंडीज से मोलक्का लाया गया और वहॉ से भारत पहुँचा। वानस्पतिक एवं आनुवंशिक दृष्टिकोण से पपीता एक काफी रूचिकर फसल है। यह बहुत कम समय में ही काफी अधिक ऊपज एवं आय देने वाली ही नहीं बल्कि औषधीय दृष्टिकोण से भी एक अति महत्वपूर्ण फल फसल है। पपीते का उपयोग सिर्फ फल के रूप में ही नहीं बल्कि सब्जी बनाने एवं मांस को मृदु बनाने में भी किया जाता है। यह बहुत आसानी से पचता है तथा इसमें प्रोटीन को पचाने वाली एक विशेष इन्जाइम ''प्रोटीनेज'' पायी जाती है। आजकल इससे विभिन्न प्रकार के उत्पाद एवं व्यंजन जैसे–जेम, जेली, अचार, मिठाईयॉ आदि तैयार किये जाते हैं तथा पपीते से उत्पन्न पपेन का इस्तेमाल विभिन्न प्रकार की दवाईयॉ एवं दन्तमंजन तैयार करने में की जाती है। पपीता फलों का राजा तो नहीं है परन्तु पपीता अपने विभिन्न विशिष्ट गुणों के कारण सभी प्रमुख फलों में अपना अतिमहत्वपूर्ण स्थान रखता है। हमारे देश में 132000 हेक्टेयर में इसकी खेती की जाती है तथा इसका कुल उत्पादन 53.82 लाख मैट्रिक टन है जो हमारे देश में कुल उत्पादित फलों का 6.6 प्रतिशत है। बिहार में इसकी खेती 1710 हेक्टेयर में की जाती है तथा इसका कुल उत्पादन 0.41 लाख मैट्रिक टन है।

उन्नत प्रभेदः

(क) गायनोडायोसियस प्रजाति (मादा या उभय लिंगी पुष्पन): रेड लेडी–786, पूसा डेलिसियस, पैन–2, पूसा मैजेस्टी, कुर्गहनीड्यू, सूर्या, सनराइज सोलो हाइब्रीड–39, हाईब्रीड–54, सीओ–3 इत्यादि।

(ख) डायोसियस प्रजाति (नर या मादा पुष्पन): पूसा जायन्ट सीओ–1ए सीओ–2ए सीओ –4ए पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा, रॉची, पन्त–1 इत्यादि।

जलवायु, मिट्टी एवं मौसम

जलवायुः– पपीता एक उष्ण कटिबन्धीय फल है जो विषुवत रेखा तथा 32 डिग्री उत्तर एवं 32 डिग्री दक्षिण के देशों में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। इसकी खेती माइल्ड सवट्रोपिकल क्षेत्रों में समुद्र तट से 2000 मीटर की ऊँचाई तक की जा सकती है। जब वायुमंडल का तापक्रम 12 डिग्री से0 से कम हो जाता है तो पपीता की वृद्धि प्रभावित हो जाती है। शुष्क एवं गर्म जलवायु वाले क्षेत्रों में पपीता के फलों में मिठास

की बढ़ोतरी होती है तथा अधिक आद्रर्ता वाले क्षेत्रों में इसमें कमी हो जाती है। तापमान के उतार–चढ़ाव से लिंग तथा फलों के निर्माण काफी प्रभावित होते हैं।

मिट्टी:– पपीता की खेती के लिए दोमट–बलुई मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। जमीन उपजाऊ होने के साथ–साथ वहॉ पानी का निकास भी ठीक हो। पपीता को कंकरीली तथा पथरीली मिट्टी में भी उगाया जा सकता है बषर्ते उसमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा अच्छी हो। मिट्टी जिसका अधिकतम पी0एच मान 8 और न्यूनतम पी0एच मान 5 हो, उसमें पपीता नहीं उगाना चाहिए। पपीता की खेती कुछ हल्की अम्लीय मिट्टी में अच्छी होती है लेकिन चिकनी मिट्टी इसकी खेती हेतु अनुपयुक्त मानी जाती है।

मौसम: भारत में पपीता को मुख्य खेत में मुख्यतः तीन मौसमों में लगाया जाता है।

वसन्त ऋतु (फरवरी–मार्च):– दक्षिण तथा पश्चिम भारत में पपीता का बीज जनवरी माह में नर्सरी में डालते हैं जिसे फरवरी–मार्च तक मुख्य खेत में लगा दिया जाता है। ऐसे बाग मानसून प्रारंभ होते ही फल देना प्रारंभ कर देते हैं तथा अक्टूबर–नवम्बर माह से फलों का पकना शुरू हो जाता है एवं अगले वर्ष मई–जून तक समाप्त हो जाता है।

मानसून ऋतु (जून–जुलाई):– भारत के उत्तर पश्चिमी इलाकों में जून के शुरू में बीज नर्सरी में बो देते हैं तथा जुलाई के अंत में मुख्य खेत में लगाते हैं। इस ऋतु में लगाये गये पपीते आखीर में फल देते हैं मगर मुख्य फलन अगले मानसून में ही होता है।

शरद ऋतु (अक्टूबर–नवम्बर):– भारत के उत्तर–पूर्वी इलाकों में जहॉ पानी अधिक होता है वहॉ अगस्त के अंत में या सितम्बर के शुरू में नर्सरी में बीज की बुआई करते हैं तथा अक्टूबर के अंत या नवम्बर के शुरू में मुख्य खेत में पौधों को लगा देते हैं। इसका फलन अगले मानसून से प्रारंभ हो जाता है।

बीज दर:– पपीता के प्रति ग्राम बीज में औसतन 65–70 बीजों की संख्या होती है। अगर औसतन 80 प्रतिशत बीज अंकुरित हो जाते हैं और 80 प्रतिशत स्वस्थ बिचड़े तैयार हो जाते हैं तो गायोडायसियस प्रजाति के लिए 75–80 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है लेकिन डायोसियस प्रजाति के लिए 250–300 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

बीज उपचार:– 2 ग्राम कार्बान्डाजिम एवं 1/2 मी0ली0 इमिडाक्लोप्रिड प्रति लीटर पानी की दर से घोलें बनाकर उस घोल में बीज को बारह घंटों तक डुबो कर छोड़ दें एवं तत्पश्चात् सूती के साफ कपड़ा से बीज को छान लें एवं इसके बाद बीज की बुआई करें।

बिचड़ा स्थली में बिचड़ों को उगाना:– पपीता का बीज बोने के लिए 1 मीटर की चौड़ाई एवं 10 सेंटीमीटर ऊॅचाई तथा आवश्यकतानुसार लम्बाई की अनेक क्यारियों को बना लेनी चाहिए। क्यारियों में गोबर की सड़ी हुई खाद या वर्मी कम्पोस्ट को मिलाकर मिट्टी को बारीक बना लें। इसके बाद कापर आक्सीक्लोराइड के 3 ग्राम तथा क्लोरोपाइरीफास की 3 मी0ली0 दवा प्रतिलीटर पानी की दर से घोलकर बीज स्थली की मिट्टी के ऊपर छिड़काव कर मिट्टी को तर कर दें एवं तत्पश्चात अच्छी तरह से इन दवाओं को मिट्टी

में मिला दें। इसके उपरांत उपचारित बीजों को कतार से कतार एवं पौधों से पौधों को 10 से0मी0 की दूरी पर एवं एक सेंटीमीटर की गहराई में बोकर बीजों को वर्मी कम्पोस्ट से ढंक देनी चाहिए। नर्सरी को जूट के भींगें बोरों से ढंक दे एवं नर्सरी में नमी बना कर रखें। पपीते के बीज 15 दिनों के आस–पास अंकुरित होकर बाहर निकल जाते हैं। बिचड़ों के बाहर निकलने के पहले ही बोरों को शाम के वक्त हटाकर कॉपर आक्सीक्लोराइड के 3 ग्राम दवा प्रतिलीटर पानी में घोलकर बिचड़ा स्थली पर छिड़ककर मिट्टी को तर कर दें जिससे बिचड़ों का गलका रोग से बचाव हो सके। जब बिचड़े लगभग दो माह के हो जाते हैं तथा इनकी ऊँचाई 15–20 से0मी0 की हो जाती है तब इन बिचड़ों को मुख्य खेत में लगाया जा सकता है।

बिचड़ों को पॉलीथीन की थैलियों में उगाना :– 200 गेज वाली 5 इन्च लम्बी 4 इन्च चौड़ी काले रंग की पॉलीथीन थैलों को पपीते के बिचड़ों को तैयार करने के लिए इस्तेमाल करनी चाहिए। दोमट मिट्टी एवं सड़े हुए गोबर की खाद को तीन एक अनुपात में मिलाकर मिश्रण तैयार कर लें एवं उसे महीन बना लें और थैलियों में भर दें एवं तत्पश्चात थैलियों के निचले भाग में 2–3 छेद कर दें जिससे थैलियों में ज्यादा पानी होने पर पानी बाहर निकल सकें। प्रत्येक थैलियों के मध्य में एक से0मी0 की गहराई में गाइनोडायोसियस प्रजाति के एक बीज को रखें एवं तत्पश्चात बोये हुए बीज को वर्मीकम्पोस्ट से ढंके। पपीता के डायोसियस प्रजाति के तीन बीजों को त्रिकोणीय विधि से बुआई प्रत्येक थैलियों में करें। बीजों की बुआई के उपरांत झरना की सहायता से हल्की सिंचाई करें। लगभग 12–15 दिनों के उपरांत बीज अंकुरित होकर बाहर आ जाते हैं। विचड़े जैसे ही अंकुरित होकर बाहर आयें उन्हें कॉपरआक्सीक्लोराइड नामक फफूंदनाशक की 3 ग्राम दवा या मैकोंजेब+मेटलक्जिल से बनी फफूंदनाशक की 2 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी की दर से घोलकर थैलियों की मिट्टी को ड्रेंच करें। आवश्यकतानुसार बिचड़ों की देखभाल करते रहे और बिचड़े जब लगभग 15–20 से0मी0 की ऊँचाई के हो जायें तो उन्हें मुख्य खेतों में लगायें। गर्मी एवं बरसाती मौसमों में बिचड़ों को नाइलोन नेट तथा ठंड के मौसम में पालीहाउस के अंदर तैयार करें।

खेत की तैयारी, विचड़ा उपचार एवं पौध रोपनः– मुख्य खेत की तैयारी हेतु खेत की एक गहरी एवं दो हल्की जुताई करें एवं तत्पश्चात् कतार से कतार एवं पौधा से पौधा 2 मीटर की दूरी पर 60 x 60 x 60 से0मी0 आकार के गड्ढों को खोदकर प्रत्येक गड्ढों में 20 कि0ग्रा0 गोबर की सड़ी खाद + एक किलोग्राम नीम की खल्ली को गड्ढों के ऊपरी भाग से निकालें गये मिट्टी के साथ मिलाकर गड्ढों को भर दें। एक महीना बाद तैयार थालों में गाइनोडायोसियस प्रजाति का सिर्फ एक पौधा प्रति थाला की दर से लगायें वहीं डायोजिसियस प्रजाति के तीन पौधे त्रिकोण विधि से लगायें। मुख्य खेत में लगाने से पहले बिचड़ों को फफूंदनाशक दवा मैन्कोजेब+मेटलक्जिल (64:8) के 0.25 प्रतिशत घोल से उपचारित करें जिससे बिचड़े रोपाई के उपरांत डेम्पिंगआफ रोग से प्रभावित नहीं हो। इसी प्रकार बिचड़ों के ऊपर मुख्य खेत में लगाने के पूर्व इमिडाक्लोप्रिड नामक कीटनाशक की एक मि0ली0 प्रति तीन लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें जिससे पौधों को रिंग स्पोट वायरल रोग से प्रभावित होने से बचाया जा सके। बिचड़ों को मुख्य खेत में लगायें तथा लगाने के उपरांत भी आवश्यकतानुसार झरनों के फव्वारों से हल्की सिंचाई करें। जब पौधों में फूल आने लगे तब लिंग भेद कर डायोसियस किस्म के पौधों की संख्या एक पौधा प्रति थाला कर 10 प्रतिशत नर पौधों को खेत में अवश्य रहने दें।

खाद एवं उर्वरकः– पपीते की फसल को खाद एवं उर्वरक की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है। शुरू में जैविक खाद देने के अतिरिक्त बाद में रासायनिक उर्वरक देना भी आवश्यक है। 250 ग्राम नाईट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस एवं 500 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश को प्रति पेड़ की दर से रोपाई के प्रथम, तृतीय, पॉचवे, सॉतवें एवं नौवें महिनों के उपरांत डालें। उर्वरकों की मात्रा को चार भागों में बांटें जिसमें एक भाग के अन्तर्गत प्रथम एवं तृतीय माह के उपरांत डालने वाले उर्वरक की मात्रा हो तथा प्रथम एवं तृतीय माह के हिसाब से इनका अनुपात 1:2 हो।

सिंचाई एवं निकाई–गुड़ाईः– जाड़े में 15–20 दिनों के अंतराल पर एवं गर्मी के दिनों में 7–10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए एवं सिंचाई उपरांत आवश्यकतानुसार निकाई–गुड़ाई करें ।

फसल सुरक्षा

जड़ एवं तना सड़नः– इस रोग में जड़ एवं तना में सड़न आ जाती है। पौधों के ऊपर की पत्तियॉ मुरझाकर पीली हो जाती है एवं पेड़ सूख जाते हैं। तने का निचला भाग तथा भूमितल जड़े पूर्णरूप से नष्ट हो जाती हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु कॉपर आक्सीक्लोराइड नामक फफूंदनाशक के 0.3 से 0.5 प्रतिशत सान्द्रता के घोल बनाकर पेड़ के जड़ों में डालें। विशेष स्थिति में कॉपर आक्सीक्लोराइड में मेटलक्जिल + मैंकजेब को 64:8 के अनुपात में मिलाकर मिश्रण तैयार कर लें एवं इसके 0.2 से 0.25 प्रतिशत सान्द्रता वाली घोल को बनाकर पौधों की जड़ों में ड्रेंच करें।

चूर्णी फफूंदः– यह बीमारी एक फफूंद ओडियम कैरिकी द्वारा होता है जिसमें डंठलों, पत्तियों एवं फलों पर सफेद चूर्ण जैसा जमाव दिखने लगता है। दिन का तापक्रम 28–30 डिग्री से0 तथा सापेक्षिक आर्द्रता 50 प्रतिशत से कम होने की स्थिति में यह रोग और अधिक रूप से पपीता की फसल को प्रभावित करता है। आक्रान्त पौधों की पत्तियाँ सूखकर गिर जाती है। फल झड़ने की स्थिति में आ जाती हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु कैलिक्सिन नामक दवा के 0.03 प्रतिशत या व्वेभिस्टिन नामक दवा की 0.1 प्रतिशत सान्द्रता का घोल बनाकर पत्तियों, डंठलों एवं फलों पर छिड़काव करें।

फल सड़न (एन्थ्रेकनोज):– यह रोग कोलेटोट्राइकम स्पिसिज से होता है जो पत्तियों के डंठल एवं फलों को मुख्य रूप से प्रभावित करता है। इस रोग में फलों पर गोल जलीय धब्बे उत्पन्न होते हैं जो बाद में अपनी वृद्धि कर फलों को सड़ा देते हैं। इस रोग से बचाव हेतु वेभेस्टिन नामक फफूंदनाशक दवा की 0.1 प्रतिशत का घोल बनाकर फलों, पत्तियों एवं डंठलों पर छिड़काव करें।

गलका रोगः– यह रोग मुख्यतः बिचड़ों को पौधशाला में भारी क्षति पहुॅचाता है। यह रोंग भी एक फफूंद जनित रोग है। इस रोग से प्रभावित होने पर बिचड़े जमीन की सतह पर से गलने लगते हैं तथा बड़ी तेजी से पौधे सूखकर गिरने लगते हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु कॉपर आक्सीक्लोराइड नामक फफूंदनाशक दवा की 0.3 से 0.5 प्रतिशत का घोल बनाकर पौधशाला की मिट्टी में झड़नों से डालकर ड्रेंच करें। विशेष परिस्थिति में कॉपर आक्सीक्लोराइड एंव मेटलक्जिल + मैंकेजेब का (64:8) अनुपात में मिलाकर मिश्रण के 0.25 प्रतिशत घोल बनाकर पौधशाला की मिट्टी में ड्रेंच करने से यह रोग आसानी से नियंत्रित हो जाता है।

मोजेक, पत्रकुंचन, पत्रफटन एवं रिंग स्पाट वायरल रोगः– इन रोगों में पत्तियॉ हरित चित्तिदार हो जाती है, पत्तियॉ फटी सी दिखाई पड़ती हैं एवं इनके सिरे नुकीले हो जाते हैं। पत्तियॉ संकुचित हो जाती है। रिंग स्पाट वायरल रोग में पत्तियों के डंठलों पर तेलीय लीजन बन जाते हैं एवं फलों पर रिंग जैसे गोले–गोले धब्बे बन जाते हैं। इन रोगों से प्रभावित होने पर पौधों की वृद्धि रूक जाती है। फलन नहीं होता हैं एवं प्रभावित फल स्वादहीन हो जाते हैं एवं फलों से मिठास समाप्त हो जाती हैं। ये रोग विषाणु जनित रोग है तथा रोगों का फैलाव सफेद मक्खी एवं माहू द्वारा होता है। इन रोगों के नियंत्रण हेतु उर्वरकों के समेकित प्रयोंग पर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है। नाईट्रोजन का अधिक प्रयोग इस रोग को बढ़ावा देता है। पौधशाला की अवस्था से पंद्रह दिनों के अंतराल पर इमिडाक्लोप्रिड या एसीटामिप्रिड नामक कीटनाशक का 0.03 प्रतिशत घोल बनाकर फसलों पर छिड़काव करते रहना इस रोग के नियंत्रण हेतु अति आवश्यक है।

पपीता का गुच्छा रोगः– इस रोग में पपीते के कोमल नये पत्ते गुच्छानुमा हो जाते हैं तथा फलन बन्द कर देते हैं। यह विषाणु रोग वर्षा के दिनों में होते हैं तथा जब तापमान एवं आर्द्रता काफी बढ़ जाती है तब यह रोग काफी तेजी से फैलता है। प्रभावित एवं आक्रांत पौधों को उखाड़कर जमीन में गाड़ दें। रोग के नियंत्रण हेतु बीज, बिचड़ों एवं पौधों को आवश्यकतानुसार इमिडाक्लोप्रीड अथवा एसीटामिप्रिड नामक कीटनाशक से उपचारित करना आवश्यक होता है। कार्बनिक खादों एवं नीम की खल्ली के इस्तेमाल इस रोग के नियंत्रण में सहायक सिद्ध होते हैं।

सूत्रकृमि रोगः– पपीते में कई प्रकार के सूत्रकृमि लगते हैं जिनमें जड़ की गॉठ वाले सूत्रकृमि तथा रेनीफार्म सूत्रकृमि बहुतायत में पाये जाते हैं। सूत्रकृमि से आक्रान्त पौधे ऊपर से सूखने लगते हैं तथा पेड़ पर लगे फल सूखकर गिरने लगते हैं। इस रोग से बचाव हेतु कार्बोफ्यूरान 10 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से इस्तेमाल करनी चाहिए। जड़ के चारों तरफ कच्चे गोबर का घोल डालकर सिंचाई कर देने से इस रोग का बढ़वार रूक जाता है।

जीवन लम्बा होने की बजाये महान होना चाहिए।

– बी. आर. अम्बेडकर

जैविक खाद का उत्पादन - टिकाऊ जैविक कृषि एवं रोजगार सृजन की दिशा में एक कदम

संजय दास

कृषि विज्ञान केन्द्र, कूच बिहार (पश्चिम बंगाल)

परिचय

आधुनिक कृषि के युग में रासायनिक निविष्टियों पर निर्भरता को कम करने, उत्पादन लागत में कमी लाने तथा साथ ही प्राकृतिक संसाधनों एवं पर्यावरण के संरक्षण की सुविधा वाली तकनीकों को जोड़ने की दृढ़ सोच के साथ फसल उत्पादन में जैविक तथा जैव–पोषक तत्वों के स्रोतों के इस्तेमाल को बढ़ाने और लोकप्रिय बनाने पर बल दिया जाता है। जैविक एवं जैव–पोषक तत्वों के स्रोतों की पृष्ठभूमि और संकल्पना से भली भांति परिचित होते हुए, कूच बिहार कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा घरेलू खपत के लिए फसल उत्पादन में जैविक तथा जैव–पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में कम्पोस्ट तथा वर्मी कम्पोस्ट के इस्तेमाल को बढ़ाने और प्रचलित करने के लिए पिछले साढ़े तीन वर्षों से एक सार्थक प्रयास किया जा रहा है। कूच बिहार और जलपाईगुड़ी जिले में ग्रामीण गरीबों की आजीविका को बनाए रखने हेतु उत्पाद प्रक्रिया में व्यावसायिक उत्पादन के लिए उद्यमशीलता विकास के एक वैकल्पिक स्रोत के रूप में इस उद्यम की सभावनाओं को तलाशने के लिए भी कृषि विज्ञान केन्द्र, कूच बिहार द्वारा हस्तक्षेप किए गए थे।

हस्तक्षेप

इस संबंध में निम्नलिखित हस्तक्षेप किए गए जिनमें प्रशिक्षण, प्रदर्शन की प्रसार विधियों का उपयोग किया गया और वर्मी कम्पोस्ट के उत्पादन, उपयोग एवं मार्केटिंग के तकनीकी पहलुओं को लोकप्रिय बनाने और इनके प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए आपसी विचार–विमर्श किया गया।

हस्तक्षेप	कार्यक्रमों की संख्या			प्रतिभागियों की संख्या		
	कृषिरत किसान	ग्रामीण युवा	कुल	कृषिरत किसान	ग्रामीण युवा	कुल
प्रशिक्षण	51	43	94	1521	603	2124
प्रदर्शन	116	16	132	116	16	132
विचार–विमर्श	42	21	63	42	21	63
कुल	209	80	289	1679	640	2319

स्कूली छात्राओं के लिए ऑन–कैम्पस प्रशिक्षण

महिला स्व सहायता समूह के लिए ऑफ–कैम्पस प्रशिक्षण

प्रभाव

जिला कूच बिहार तथा नजदीकी जिला जलपाईगुड़ी के कुल 2,319 प्रतिभागियों में से अब कुल 1,354 किसान कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट तैयार कर रहे हैं। स्पष्ट तौर पर 11 स्व–सहायता समूह और 11 निजी/संगठन व्यावसायिक स्तर पर कच्ची सामग्री के रूप में जैविक खाद बनाने के कार्य में आगे आए हैं जबकि अन्य 7 व्यक्तियों/संगठनों द्वारा अपने यहां लघु स्तरीय औद्योगिक इकाई स्थापित की गई है। इसके अलावा, उनके द्वारा ''किसान'', ''स्वर्णा'', ''भूमिश्री'' आदि जैसे ब्राण्ड नाम से अपने उत्पादों की मार्केटिंग भी की जा रही है। उपरोक्त 7 व्यक्तियों/संगठनों द्वारा हासिल की गई उल्लेखनीय सफलता वास्तव में उनकी उद्यमशीलता की सफलता है और निश्चित की गई कड़ी मेहनत से ये बेरोजगार युवा एक सफल उद्यमी तथा/अथवा व्यवसायी के रूप में रूपांतरित होने के वास्तविक हकदार हैं।

वर्मी एग्रोटेक तथा उनके ब्रांडिड उत्पादों की एक झलक

उत्पादन, आय तथा रोजगार सृजन की एक झलक

उद्यमी का नाम	स्थान	उत्पाद	ब्राण्ड का नाम	उत्पादन (क्वि.)	कुल आय (लाख रूपये में)	निवल आय (लाख रूपये में)	सृजित मानव–दिवस/वर्ष (*)
प्रतिमा सूत्रधर	वर्मी एग्रोटेक, सोनारी, कूच बिहार–ए्ए कूच बिहार	वर्मी कम्पोस्ट	किसान	5,000	25.00	12.00	2,600

अनूप कुमार मोइत्री	श्री दुर्गा एग्रो इंडस्ट्रीज, दुडुमरी, मरीचबारी, कूच बिहार –प्ए कूच बिहार	कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट	स्वर्णा	4,600	25.30	11.96	2,460
विश्वजीत राय	बंगाल आर्गेनिक एग्रो, सिंगीजनी, मठभंगा– प्ए कूच बिहार	कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट	भूमिश्री	4,200	23.10	11.76	2,380
अन्वेषा हार्टिकल्चर एंड रिसर्च फार्म	तूफानगंज, कूच बिहार	कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट	अन्वेषा	2,000	12.00	5.80	1,350
दीपक नंदी	बरबिशा लश्करपारा, कुमारग्राम, जलपाईगुड़ी	वर्मी कम्पोस्ट	उतार सोना	800	4.40	1.92	540
सफीकुल इस्लाम	कामत अबुटेरा, दिन्हता– ए कूच बिहार	वर्मी कम्पोस्ट	–	960	5.28	2.40	530
गोबिन्द राय	भांडी जलास, तूफानगंज–प्ए कूच बिहार	वर्मी कम्पोस्ट	–	300	1.65	0.73	215

(*) : प्रतिवर्ष प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सृजित मानव दिवस/श्रम दिवस

उपरोक्त वर्णित सभी उद्यमी जो कि पहले स्वयं बेरोजगार थे, अब न केवल उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा एवं साथ के साथ एक नवोन्मेषी उद्योगपति अथवा व्यवसायी बन चुके हैं वरन् उनके द्वारा नजदीकी क्षेत्र के अन्य लोगों को भी रोजगार प्रदान किया जा रहा है जिसका सीधा असर आसपास की स्थानीय अर्थव्यवस्था पर पड़ा है।

श्री दुर्गा एग्रो इंडस्ट्रीज एवं उनके ब्रांडिड उत्पाद

इन 7 सफल व्यक्तियों से प्रेरणा लेते हुए अन्य 5 व्यक्तियों/संगठनों ने भी खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग (के.वाई.आई.सी.), जिला उद्योग सेल (डी.आई.सी.) तथा ब्लॉक विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.) के समक्ष अपने परियोजना प्रस्ताव प्रस्तुत किए हैं जिनमें इनके द्वारा व्यापक स्तरीय व्यावसायिक कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट इकाइयों की स्थापना के लिए ऋण का आवेदन किया गया है। इनके ये प्रस्ताव प्रगति–पथ पर हैं। ये सभी परियोजना प्रस्ताव कृषि विज्ञान केन्द्र, कूच बिहार की मदद से तैयार किए गए। इसके अलावा, छोटे किसानों द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र अथवा उपरोक्त उद्यमियों से लगभग 16,00,000 केंचुए भी खरीदे गए जो कि वर्मी कम्पोस्ट की लोकप्रियता को दर्शाता है। वर्मी कम्पोस्ट के उत्पादन और मार्केटिंग में धीरे–धीरे लगातार वृद्धि हो रही है। उद्यमियों और यहां तक कि कृषिरत किसानों के बीच मूल्य वर्धित वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन के संबंध में जागरूकता का सृजन भी किया गया है, जिसका पता कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट की गुणवत्ता की जांच करने के लिए विभिन्न उद्यमियों एवं किसानों से कृषि विज्ञान केन्द्र, कूच बिहार को प्राप्त हुए नमूनों (145) से चलता है। वर्तमान में, कृषि विज्ञान केन्द्र को किसानों तथा ग्रामीण युवाओं से लगातार आवेदन प्राप्त हो रहे हैं जिनमें उनके द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र से घरेलू स्तर पर तथा व्यावसायिक स्तर पर कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट के उत्पादन पर दक्षता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने का अनुरोध किया जाता है। वर्तमान स्थिति यह है कि केवीके द्वारा किसानों तथा ग्रामीण युवाओं से परिवार एवं वाणिज्यिक स्तर पर फसल उत्पादन में कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट के उत्पादन, फसल उत्पादन में इसकी भूमिका और टिकाऊ आजीविका के लिए आय सृजन हेतु एक वैकल्पिक स्रोत के रूप में इस व्यवसाय की क्षमताशीलता व संभावनाओं पर कौशल विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के लिए अनुरोध प्राप्त किए जा रहे हैं।

निष्कर्ष: टिकाऊ आजीविका स्तर को बनाए रखने के लिए किसी भी समय तथा किसी भी स्थान पर ग्रामीण युवाओं और महिलाओं को समुचित अवसर प्रदान कर सशक्त बनाया जा सकता है।

भगवान एक है, लेकिन उसके कई रूप है, वो सभी का निर्माणकर्ता है और वो खुद मनुष्य का रूप लेता है।

– श्री गुरू नानक देव

गोंत्रा समवाय कृषि उन्नयन समिति - सहकारिता आंदोलन में अग्रणी

के. के. गोस्वामी

कृषि विज्ञान केन्द्र, नदीया (पश्चिम बंगाल)

परिचय

गोंत्रा समावय कृषि उन्नयन समिति की स्थापना वर्ष 1952 में केवल 30 सदस्यों तथा रानाघाट को–ऑपरेटिव बैंक से मिले रूपये 5,000/– के ऋण के साथ की गई थी। समिति के क्षेत्र तथा किसान सदस्यों में तब बढ़ोतरी हुई जब इसमें घेटुगाछी तथा मंगलहट नाम के दो अन्य गांव भी शामिल हुए। समिति की मुख्य गतिविधियों में किसानों को एकल खिड़की सुपुर्दगी के माध्यम से बीज, उर्वरक व कृषि रसायन, ऋण, सिंचाई तथा उन्नत तकनीकों जैसे कृषि निविष्टियों को सुलभ कराना है। गुणवत्तापूर्ण निविष्टियों की आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए समिति द्वारा एक मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला, पौधा स्वास्थ्य क्लीनिक, कृषि सूचना कियोस्क तथा एक कृषि मैकेनिकल हब की स्थापना की गई है। समिति के सदस्यों के सामूहिक उत्थान के लिए समिति द्वारा गुणवत्ता बीज उत्पादन के लिए बीज ग्राम स्थापित किए गए हैं तथा साथ ही उत्पादों की सुनिश्चित खरीद के माध्यम से बेहतर आय सृजन की व्यवस्था की गई है।

सहभागिता प्रौद्योगिकी सृजन एवं जैव–विविधता संरक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत अपने सार्थक प्रयासों के माध्यम से समिति द्वारा धान की अनेक किस्में विकसित की गईं हैं और अनेक प्रचलित किस्मों का रख–रखाव किया गया है (किसानों की 165 किस्में)।

समिति के संरक्षक की भूमिका का निर्वहन नाडिया कृषि विज्ञान केन्द्र, बिधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, इफ्को, नाबार्ड तथा राज्य कृषि विभाग, सहकारिता विभाग, पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा किया जाता है और समिति के किसान सदस्यों को लाभ पहुंचाने वाली विभिन्न स्कीमों को लागू करने के लिए इन संगठनों द्वारा वित्तीय एवं तकनीकी मदद प्रदान की जाती है।

समिति – एक नजर में

क्र.सं.	विवरण	
1.	संगठन का नाम	गोंत्रा समावय कृषि उन्नयन समिति लि.
2.	पता	पो.आ.– घेटुगाछी, जिला – नदीया, राज्य – पश्चिम बंगाल
3.	सम्पर्क नम्बर	03473–227563 / 227564 9800819013 / 9800819008

4.	सम्पर्क व्यक्ति	गोंत्रा समावय कृषि उन्नयन समिति लि.
		पो.आ.– घेटुगाछी, जिला – नदीया, राज्य – पश्चिम बंगाल फोन : 03473–227564 / 09800819008 (मो) ई–मेल : gontraskus@gmail.com
5.	संगठन की प्रकृति	प्राइमरी कृषि को–ऑपरेटिव क्रेडिट सोसायटी
6.	सदस्यता का क्षेत्र	चार गांव नामतः गोंत्रा, घेटुगाछी, मण्डलहट, रामकृष्णापुर
7.	प्रचालन का क्षेत्र (बीज उत्पादन)	गोंत्रा, घेटुगाछी, मण्डलहट, रामकृष्णापुर, बनमालीपारा, सतबेरे, पानपुर, कुगाछी, अटन्ले, बाबला (बांकुरा) तथा खासपुर (बांकुरा), भाबला (उत्तरी 24 परगना)
8.	समिति की कुल सदस्य	908. 1 (राज्य सरकार)
9.	जमा	रूपये 321 लाख
10.	स्व–सहायता समूह	67
11.	फसल ऋण संवितरण	रूपये 66 लाख/वर्ष
12.	स्व–सहायता समूह ऋण	रूपये 23 लाख/वर्ष
13.	स्व–सहायता समूह जमा	रूपये 31 लाख अब तक
14.	प्रमाणित बीज उत्पादन	2000 ङज /वर्ष
15.	आधारीय बीज उत्पादन	3000 ङज /वर्ष
16.	प्रजनक बीज उत्पादन	15 ङज (गोंत्रा बिधान–ए) दो सीजन में
17.	बीज की बिक्री	रूपये 4.5 करोड़/वर्ष
18.	उर्वरक की बिक्री	रूपये 3.33 करोड़/वर्ष
19.	आर.के.वी.वाई. द्वारा वित्त पोषित मैकेनिकल हब से सृजित राजस्व	रूपये 1,40,000/–
20.	वर्तमान बीज भंडारण गोदाम	3, कुल 3000 ङज क्षमता
21.	समिति के पास जमीन	3 हेक्टेयर
22.	किसान परामर्श सेवा इकाइयां	मिट्टी परीक्षण प्रयोगशाला, पौध स्वास्थ्य क्लीनिक, किसान प्रशिक्षण हॉल, मिनी गहरा टयूब वैल, मैकेनिकल हब

क. किसान समुदाय को वित्तीय सहायता

i.	अल्पावधि ऋण
ii.	मध्यावधि ऋण
iii.	परिवहन ऋण
iv.	बंधक अथवा गिरवी ऋण (किसान विकास पत्र, एन.एस.सी., समिति का टी/डी)
v.	फसल ऋण
vi.	निर्धन लोगों के लिए उपभोग ऋण
vii.	व्यवसाय ऋण
viii.	शिक्षा ऋण
ix.	स्व–सहायता समूहों को ऋण
x.	किसान क्रेडिट कार्ड्स
xi.	नरेगा खाताधारकों को भुगतान

ख. कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता संवृद्धि कार्यक्रम

i.	बीज ग्राम की स्थापना	गुणवत्तापूर्ण बीज की जरूरत की पूर्ति करना और उचित मूल्यों पर किसानों को उनके घर पर ही समय पर बीज की आपूर्ति सुनिश्चित कराना
ii.	प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन	प्राकृतिक निचली भूमि पारिस्थितिकी प्रणाली में समेकित कृषि प्रणाली लागू करना
iii.	फसल की सघनता को बढ़ाने के लिए सिंचाई सुनिश्चित करना	समिति के अपने मिनी गहरे टयूब वैल/उथले टयूब वैल के माध्यम से किसानों को सिंचाई की आपूर्ति करना
iv.	चावल की खेती के लिए सामुदायिक बीज क्यारी की स्थापना	कम लागत पर किसानों को चावल की उच्च ओज, आनुवंशिकीय शुद्ध पौद की आपूर्ति के लिए
v.	किसान परामर्श सेवा	
क	पौध स्वास्थ्य क्लीनिक की स्थापना	फसलों की नाशीजीव एवं रोग परिस्थितियों, पहचान तथा आई. पी.एम. के माध्यम से रोगों एवं नाशीजीवों की रोकथाम के बारे में किसानों में जागरूकता पैदा करना
ख	मास्टर प्रशिक्षक के माध्यम से सामुदायिक पौध संरक्षण सेवा	अग्रिम परिस्थिति के लिए विशिष्ट एवं पर्यावरण अनुकूल सिफारिशें

ग	समेकित नाशीजीव एवं पोषक तत्व प्रबंधन पर प्रशिक्षण	रसायनों एवं उर्वरकों के उचित उपयोग और जैविक कृषि को बढ़ावा देना
घ	फार्म यांत्रिकीकरण के लिए मैकेनीकल हब की स्थापना	किसानों को जुताई, कटाई, सिंचाई, गहाई (थ्रेसिंग), छिड़काव मशीनरी की आपूर्ति सुनिश्चित करना और लागत को कम करने के लिए सामुदायिक फसल प्रबंधन कार्यक्रम को अपनाना
ड	किसान कियोस्क तथा किसान संचार सेवा की स्थापना	इन्टरनेट तथा मोबाइल सेवा के माध्यम से किसानों को घर बैठे जानकारी प्रदान करना

ग प्रौद्योगिकी सृजन कार्यक्रम

i.	किसान सहभागिता पादप प्रजनन	किसानों के पास उपलब्ध संसाधनों तथा उनकी पसंद को ध्यान में रखते हुए चावल फसल की सूक्ष्म परिस्थिति विशिष्ट किस्म का विकास करना। पूर्वी तथा उत्तर पश्चिमी राज्यों में व्यावसायिक खेती के लिए पहले ही दो किस्मों यथा गोंत्रा बिधान–1 तथा गोंत्रा बिधान–2 को सी.वी.आर.सी. तथा एस.वी.आर.सी. द्वारा जारी किया जा चुका है।
ii.	चावल की प्रचलित किस्म का आनुवंशिक संरक्षण एवं इसकी व्यावसायिक उपयोगिता	व्यावसायिक उपयोगिता के लिए पारम्परिक 165 प्रचलित किस्मों तथा 10 उच्च मूल्य वाली चावल किस्मों का संरक्षण करना और उन्हें हष्ट–पुष्ट रखना
iii.	चावल तथा सरसों की किस्मों का किसान सहभागिता मूल्यांकन	किसानों के लिए उपयुक्त परिस्थिति विशिष्ट किस्म का चयन करना
iv.	निचली भूमि जोखिम संवेदी चावल पारिस्थितिकीय प्रणाली का प्रभावी प्रबंधन	चावल–मत्स्य–सब्जी के साथ समेकित कृषि प्रणाली के लिए एक मॉडल विकसित करना

घ सामाजिक प्रतिबद्धता

i.	बीज ग्राम कार्यक्रम के माध्यम से महिलाओं के लिए रोजगार का सृजन करना	प्रति वर्ष औसतन 800 महिला दिवस सृजित किए गए।
ii.	स्व–सहायता समूहों को बढ़ावा देना	पहले ही सत्तानवे (97) स्व–सहायता समूह गठित किए जा चुके हैं और वे कार्यशील हैं।

iii.	भूजल में आर्सेनिक के संदूषण के खतरे के प्रति जागरूकता अभियान कार्यक्रम चलाना	पेयजल में आर्सेनिक संदूषण का सामना करने के लिए बंगाल इंजीनियरिंग कॉलेज, शिबपुर, हावड़ा के सहयोग से आर्सेनिक फिल्टर के साथ टयूब वैल की स्थापना कर प्रबंध किए गए।
iv.	स्व सहायता समूहों की मदद से पादप जैव–विविधता रजिस्टर तैयार करना	गांव के आर्थिक महत्व वाले पौधों को पंजीकृत किया गया है और महिलाओं की भागीदारी के माध्यम से समिति में जैव विविधता रजिस्टर रखा गया है।
v.	मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सुविधा	निःशुल्क चिकित्सा जांच

विविध गतिविधियां

सहभागिता प्रौद्योगिकी विकास एवं पारिस्थितिकीय प्रणाली प्रबंधन

पश्चिम बंगाल की निचली भूमि चावल पारिस्थितिकीय प्रणाली में आमतौर पर वहां चावल की खेती करने वाले किसानों को भारी वर्षा एवं अपर्याप्त जल निकासी के कारण बार–बार आने वाली बाढ़ के कारण गंभीर परेशानी का सामना करना पड़ता है। जोखिम संवेदी निचली भूमि चावल कृषि पारिस्थितिकीय प्रणाली में यह परेशानी पश्चिम बंगाल के किसानों के लिए गंभीर चिन्ता का विषय है। इस कृषि पारिस्थितिकीय प्रणाली की भूमि का उपयोग करने के लिए किसानों तथा वैज्ञानिकों की सक्रिय भागीदारी से एक मॉडल विकसित किया गया। इस मॉडल में चावल–मत्स्य–सब्जी घटकों के साथ समेकित कृषि प्रणाली (आई.एफ.एस.) को शामिल किया गया है और इसका विकास नदीया जिले के चाकदह ब्लॉक में गांव बनमालीपारा में किया गया है। गांव बनमालीपाड़ा भी बीज उत्पादन कार्यक्रम में एक भागीदार गांव है।

नदीया जिले के चकदाहा ब्लॉक में गांव बनमालीपारा में निचली भूमि (1.36 हेक्टेयर) जुलाई से दिसम्बर तक लगभग 2 से 2.5 मीटर तक जलमग्न रहती थी। अर्ध–गहरे जल में बोई जाने वाली चावल की किस्में यहां वांछनीय उपज देने में सक्षम नहीं थीं। एक गहरे तालाब में निचले टेरेस क्षेत्र तथा चारों ओर ऊंचा बांध बनाकर जमीन की पुनः संरचना की गई। जमीन को दोबारा तैयार करने से वर्षाकाल में प्लॉट में बाहर से बहकर आने वाले पानी की रोकथाम की जा सकी। निचली टेरेस (वर्षाकाल के दौरान) तथा जून से दिसम्बर के दौरान तालाब में प्रतिवर्ष 1.31 टन/हेक्टेयर की दर पर मत्स्य उत्पादन हुआ। जनवरी से मई की अवधि में तालाब में 120 दिनों से कम समय में पकने वाली ग्रीष्म चावल (बोरो) की खेती की गई जिससे प्रतिवर्ष 6.25 टन/हेक्टेयर की उपज प्राप्त हुई। वर्षभर तालाब के बांध पर सब्जियां उगाई गई। सर्दियों के दो सीजन में हाइब्रिड टमाटर से प्रतिवर्ष 6.25 टन/हेक्टेयर की उपज प्राप्त हुई जबकि तीसरे वर्ष लोबिया (सब्जी) की 7.33 टन/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। वर्षाकाल में किए गए मत्स्य पालन का ग्रीष्म चावल की खेती पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा जबकि चावल की खेती की लागत में 20 प्रतिशत तक की कमी आई। सिंचाई में जल आवश्यकता में भी कमी आई क्योंकि रोपाई के समय जमीन गीली अथवा कीचड़ से भरी होती है। इसलिए जमीन की गीली जुताई के लिए पानी की आवश्यकता नहीं रहती। इस तरीके से सिंचित जल की लगभग 20 सेमी. तक की बचत की जाती है।

इस कृषि मॉडल को ऐसे किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाया गया था जो एक अनुपजाऊ व बंजर निचली भूमि को एक टिकाऊ लाभप्रद उद्यम में बदलकर उससे अति विशिष्ट लाभ प्राप्त करने की संभावना को भाप पाए थे।

सहभागिता पादप प्रजनन के माध्यम से नवीन किस्मों का विकास

समिति के किसानों तथा बिधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय के पादप प्रजनकों द्वारा एक सहभागिता पादप प्रजनन विधि में चावल की तीन अगेती परिपक्वता एवं उच्च उपजशील किस्में, चावल की चार उच्च उपजशील, बौनी, छोटे दानों वाली सुगंधित किस्में तथा चार बासमती किस्में विकसित की गईं। विकसित की गईं चावल किस्मों में से गोंत्रा बिधान–1 (पूर्वी तथा उत्तर पश्चिमी राज्यों के लिए विमोचित एवं अधि ासूचित) तथा गोंत्रा बिधान–2 (पश्चिम बंगाल के लिए विमोचित) किस्में वर्तमान में पश्चिम बंगाल के पश्चिमी भाग, झारखण्ड तथा बिहार के किसान समुदाय के बीच अत्यंत लोकप्रिय हैं। जून, 2014 में गोंत्रा बिधान–3 किस्म को अधिसूचित किया गया और भारत के बारह राज्यों नामतः पंजाब, हरियाणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, बिहार, ओड़िशा और झारखण्ड में इसकी खेती की सिफारिश की गई।

सहभागिता चावल जैव–विविधता : संरक्षण एवं व्यावसायिक उपयोगिता

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि बहुत–से देशज वंशक्रमों और स्थान विशिष्ट आनुवंशिक संसाधनों, विशेषकर उच्च उपजशील किस्मों (जिनमें ह्यसमान लाभ के लक्षण दिखाई दे रहे हैं) में तेजी से गिरावट आ रही है, व्यावसायिक उपयोगिता के लिए मूल्य वर्धित चावल किस्मों के मूल्यांकन हेतु कृषि विविधता की संवृद्धि की दिशा में किसानों की सहभागिता भूमिका पर बल दिया गया है। सहभागिता संरक्षण की रणनीति इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकिः–

1. स्थानीय देशज वंशक्रम तथा फसल किस्में मूल्यवान जीन का संभावित स्रोत होती हैं जिनसे किसान समुदाय को लाभान्वित किया जा सकता है; तथा
2. संरक्षण की सफलता काफी हद तक जीनप्ररूप से भली–भांति परिचित होने वाले किसानों के व्यक्तिगत प्रोत्साहन पर निर्भर करती है।

गोंत्रा समवाय कृषि उन्नयन समिति द्वारा समस्याओं का समाधान किया जाता है और साथ ही पश्चिम बंगाल के नदीया जिले में हमारे गोंत्रा गांव में चावल की 165 लोक किस्मों के संरक्षण, प्रवर्धन और उपयोगिता में एक अनूठी किसान सहभागिता पद्धति के अनुभवजन्य प्रमाण उपलब्ध कराती है। किसानों द्वारा स्वयं ही पश्चिम बंगाल के विभिन्न स्थानों, विशेषकर विभिन्न कृषि पारिस्थितिकीय प्रणाली क्षेत्रों में रहने वाले अपने रिश्तेदार किसानों, से पारम्परिक चावल की किस्मों का संकलन किया गया। संकलित जीनप्ररूपों का रख–रखाव किया गया और मूल्यांकन, गुणनीकरण और सूचीकरण के लिए हमारे गांव की सामुदायिक पद्धति पर आधारित किसान सहकारी समिति की निगरानी में प्रतिवर्ष इन किस्मों की बुवाई की गई। नदीया कृषि विज्ञान केन्द्र तथा बिधान चन्द्र कृषि विश्वविद्यालय द्वारा तकनीकी सहायता उपलब्ध

कराई गई। चावल जीनप्ररूपों के चयन तथा इनकी व्यावसायिक उपयोगिता के लिए किसानों द्वारा विभिन्न कृषि पारिस्थितिकीय प्रणाली में बोए गए जीनप्ररूपों के प्रदर्शन तथा आंकडों की सफलतापूर्वक समीक्षा की गई। जीनप्ररूपों अथवा किस्मों का चयन उनकी उच्च मूल्य वाली विशेषताओं के आधार पर किया गया जिनमें शामिल थीः– सुगंध, प्रोटीन की मात्रा, अधपके (parboiled) चावल की गुणवत्ता, पफिंग, चटपटापन, पॉपिंग क्षमता तथा चावल के वैकल्पिक प्रयोग के तहत उच्च बाजार भाव। सीमित जीनपूल होने के बावजूद वांछनीय जीनप्ररूपों का चयन किया गया और उन्हें पुनः मूल्यांकन के लिए विभिन्न कृषि पारिस्थितिकीय प्रणाली क्षेत्र के किसानों के बीच वितरित किया गया। जीनप्ररूपों का परीक्षण करने और व्यावसायिक खेती के लिए स्थान विशिष्ट किस्मों का चयन करने में किसान सफल हुए।

किसान सहभागिता पद्धति के आधार पर तीन वर्षीय खेत परीक्षण अवधि के दौरान व्यावसायिक खेती के लिए संकलन में से छः जीनप्ररूपों का चयन किया गया। सीमित जीनपूल से प्रत्येक श्रेष्ठ जीनप्ररूप का चयन करने के लिए किसानों के प्रारंभिक ज्ञान और विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक मार्गदर्शन का मिश्रण कर इस सामुदायिक जीन बैंक का प्रभावी तरीके से उपयोग किया गया।

किसान सहभागिता पद्धति पर आधारित जीनप्ररूपों/किस्मों का चयन संस्थागत कार्यविधि की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी और लाभप्रद सिद्ध होगा क्योंकि किसान लोक किस्मों की पृष्ठभूमि से भली–भॉति परिचित थे। तीन जीनप्ररूपों का संकलन किसानों द्वारा ही किया गया । सभी स्तरों पर किसानों की भागीदारी से विकसित ऐसा जीन बैंक कहीं अधिक उपयोगी होता है क्योंकि किसान स्वयं खेत में जीनप्ररूप की जांच कर सकते हैं और अपनी विशिष्ट मांग के अनुरूपण हेतु उसका चयन कर सकते हैं। सहभागिता संरक्षण को जैव–विविधता संरक्षण तथा व्यावसायिक उपयोगिता के लिए एक त्वरित एवं प्रभावी मॉडल माना जाता है ।

आर्सेनिक के खतरे के प्रति जागरूकता एवं निषेधक कार्यक्रम

वर्ष 1992 में पर्यावरण विज्ञान निदेशक द्वारा इन गांवों के विभिन्न टयूब वैल में पेयजल में आर्सेनिक की मात्रा तथा मानव जनसंख्या में आर्सेनिक के प्रदूषण स्तर के संबंध में एक सर्वेक्षण किया गया था। इस सर्वेक्षण में यह पाया गया था कि स्थानीय टयूब वैल में 5 गुणा से भी अधिक विषालुता मौजूद थी और आर्सेनिक से 1000 से भी अधिक लोग प्रभावित थे तथा 39 व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी। उस समय से गोंत्रा एस.के.यू.एस. द्वारा आर्सेनिक के प्रदूषण के विरूद्ध संघर्ष किया जा रहा है और इसके द्वारा बंगाल इंजीनियरिंग कॉलेज, शिबपुर, हावड़ा की मदद से दो गांवों नामतः गोंत्रा एवं घेटुगाछी में आर्सेनिक फिल्टर वाले 5 टयूब वैल सफलतापूर्वक स्थापित किए गए। हमें यह बताते हुए खुशी हो रही है कि इन प्रयासों से वर्तमान में इन दोनों गांवों के लगभग 500 परिवारों को लाभ पहुंचा है।

स्व–सहायता समूहों (एस.एच.जी.) का सृजन एवं उन्हें बढ़ावा देना

''गरीबी सबसे बड़ा प्रदूशक है''

ग्रामीण महिलाओं की आय को बढ़ाने की सुविधा के लिए स्व–सहायता समूह गठित किए गए हैं।

आय पैदा करने वाले विभिन्न कार्यक्रमों को अपनाकर अनेक भूमिहीन महिला मजदूर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन गई हैं। स्व–सहायता समूहों के लिए लागू की गई कुछ परियोजनाएं इस प्रकार हैं:– पफ्ड चावल उत्पादन, बकरी पालन, पोल्ट्री पालन, बत्तख पालन, टेलरिंग (सिलाई व कढ़ाई), बांस की टोकरी बनाना, तले हुए चने से ''छाटु'' बनाना, जैविक खाद उत्पादन, बीड़ी निर्माण आदि। इन गतिविधियों से स्व–सहायता समूहों द्वारा समिति के बचत खाते में पहले ही रूपये 31.0 लाख जमा कराये जा चुके हैं।

आप बंद मुट्ठी से हाथ नहीं मिला सकते।

– इंदिरा गांधी

मक्का की खेती अररिया के लिए वरदान

पंकज कुमार सिन्हा
कृषि विज्ञान केन्द्र, अररिया (बिहार)

भारत में धान एवं गहूँ के बाद मक्का सबसे महत्वपूर्ण धान्य फसल है। इसका क्षेत्र फल 2010–11 में लगभग 83 लाख हे० तथा जिस मे 201 लाख टन पेदावार प्राप्त हुई थी और औसत उत्पादकता 24.35 क्विंटल प्रति हे० दर्ज कि गई थी। बिहार राज्य में इसका क्षेत्र फल 7.5 लाख हे० तथा उत्पादन 17.1 लाख टन दर्ज हुई। मक्के कि उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि का श्रेय मुख्य रुप से सिंगल क्रॉस हाइब्रिड मक्का को जाता है। जो मक्का के कुल क्षेत्रफल का 25 प्रतिशत हैं।

सिंगल क्रॉस हाइब्रिड एकरुकता तथा उच्च उत्पादकता के कारण किसानों के बिच काफी लोकप्रिय है। इसके लिये सिर्फ दो जनकों की आवश्यकता होती है। विगत वर्षो में कई उन्नत संकर मक्का विकसित हुए हैं जो जैविक (रोग आदि) तथा अजैविक (बाढ़ सूखा आदि) परिस्थितियों के प्रति सहिष्णु है। संकर बीज उत्पादन तकनीक का ज्ञान हासिल कर ग्रामीण व्यक्तियों और कृषि स्नातकों को रोजगार के अवसर प्रदान हो सकते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो सकती है। सिंगल क्रॉस हाइब्रिड मक्का के बीज उत्पादन के लिए एक नर और एक मादा इन्ब्रेड लाईन (जन्मजात लाइनें) की जरुरत होती हे और सिर्फ एक रितु में बीज तैयार हो जाता है। बिहार में गेहूँ के क्षेत्र धीरे–धीरे मक्के कि खेती कि ओर बढ़ते चले जा रहे है। जिसका मुख्य करण हाईब्रिड मक्के से अच्छी उपज प्राप्त करणा एवं मक्के कि बजार में अच्छी माँग होना। भारतीय बजार में मक्के से विभिन्न उत्पाद बनने से भि मक्के कि अच्छी माँग है। बिहार रज्य में खगड़ीया से शुरु हुई और आज पुरे कोशी क्षेत्र की सबसे लोकप्रिय फसल होती चली जा रही है इससे अच्छी किसान भाईयों को लाभ प्राप्त होती है। अतः कोशी क्षेत्र में मक्के कि खेती किसान भाईयों के लिए वरदान ही साबित हो रहा हैं।

फसल कि खेती में समय और प्रभेद का चयन करना एक महत्वपूर्ण विन्दू है। बिहार रज्य में खासकर कोशी क्षेत्र एवं गंगा के मेदानी भाग के लिए उपयुक्त तथा संस्तुत सिंगल क्रॉस हाईब्रिड सारणी में दिए गए है।

उर्वरक का प्रयोगः

मक्के कि खेत में बुयाई के 15 दिन पूर्व 15 टन गौवर कि खाद डालना चाहिए। प्रति हे० 180 किलो ग्राम नाइट्रोजन 80 किलो ग्राम फासफोरस 80 किलो ग्राम पोटाश तथा 25 किलो ग्राम जिंक सलफेट कि आवश्यकता होती है। फासफोरस, पोटाश और जिंक कि पुरी खुराक तथा 10 प्रतिशत नाइट्रोजन बुयाई के समय दे देना चाहिए। नाइट्रोजन कि सेस खुराक चार भागो में 20 प्रतिशत चार पत्ती होने पर 30 प्रतिशत 8 पत्यों पर शेष 40 प्रतिशत पुष्पन के समय देनी चाहिए।

नाम	विशेष गुण	औसत उत्पादकता
संकर मक्का एक	अगेती	30 कु०/हे०
राजेन्द्रर मक्का दो	पछेति अवधि	40 कु०/हे०
राजेन्द्र मक्का एक	पछेति अवधि	50 कु०/हे०
एच० क्यु० पी० एम० पाँच	पछेति अवधि	60 कु०/हे०
शक्तिमान एक, दो, चार	पछेति अवधि	60 कु०/हे०
एच० एम० 9	मध्यम परिपक्वता अवधि	60 कु०/हे०
मलविय हेइब्रिड मक्का दो	मध्यम परिपक्वता अवधि	54 कु०/हे०
विवेक 27	अति अगेती	55 कु०/हे०
प्रकाश	अति अगेती	60 कु०/हे०

ध्यान देने योग्य यह है कि परागमन के समय खेत में उपयुक्त नमी बना कर रखी जाय। लगभग 55 से 60 दिनों कि अवस्था तक खरपतवार का पूर्ण नियंत्रन रखना आवश्यक है। खरपतवार के नियंत्रन के लिए रासायनिक जहर अट्राजीन चोड़ी पत्ती एवं प्रमुख घासों को भी नियंत्रित करता है। बुआई के दो दिनों के अंदर 1 से 1.5 केजी अट्राजीन 600 लिटर पानी प्रति हे० कि दर से घोल कर छिड़काव करने से खरपतवार नियंत्रित किये जा सकते है। समय–समय पर निकाई गुडाई किसान को पिछे कि ओर खिसक कर करना चाहिए।

मिट्टी चढ़ाने से एक दिन पहले नाईट्रोजन कि तिसरी खुराक डाल कर निकाई गुडाई करनी चाहिए।

अररिया जिला जिसका भौगोलिक क्षेत्रफल 271712 हेक्टर है। इसके उत्तर में नेपाल, दक्षिण में पूर्णियाँ तथा मधेपुरा, पूरब में किषनगंज तथा पश्चिम में सुपौल जिला है। यहाँ 162451 हेक्टर क्षेत्र में खेती होती है जिसमें 143647 हेक्टर वर्षा आधारित तथा 18778 हेक्टर सिंचित क्षेत्र है।

अररिया जिला में 71% बलुई और बलुई दोमट मिट्टी हे तथा शेष 29% क्षेत्र में चिकनी मिट्टी है तथा यहाँ की जलवायु अनाज एवं उद्यानिकी फसलों के लिए उपयुक्त है। न्यूनतम एवं अधिकतम तापमान क्रमशः 4.10 से० एवं 460 सेन्टीग्रेड है तथा वार्षिक वर्षापात् 1358.2 मि० मी० है। यहाँ की कुल जनसंख्या 2806200 है जिसमें 26.21% खेतीहर तथा 64.7% खेतीहर मजदूर है। जिले के विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। इस जिले की मुख्य फसलें धान, गेहूँ, मूँग, जूट, मूँगफली और मक्का है। वर्ष 2010–11 से ही रबी मक्का आच्छादित क्षेत्र बढ़ते क्रम में है जबकि गेहूँ का क्षेत्र घटा है और इसका उत्पादन भी पहले की तुलना में घटा है।

इसी क्रम में अररिया जिले का कृषि विज्ञान केन्द्र नवीनतम कृषि सूचना का भण्डार है जो जिले के किसानों के लिए ज्ञान का प्रमुख केन्द्र है। अर्थात यह एक प्रथम स्तरीय प्रसार योजना है जिसका उद्देश्य है प्रशिक्षण एवं अन्य प्रसार गतिविधियों के द्वारा किसानों को नई–नई तकनीकी की जानकारी देना, उसे

अपनाने के लिए प्रेरित करना एवं उनकी कार्यकुशलता में निपुणता लाना। प्रशिक्षण के अलावा ग्रामीण समुदाय के लोगों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण का भी प्रावधान है जिसका उद्देश्य कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों में उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ स्वरोजगार के अवसर प्रदान करना हैं।

विगत दश वर्षों में कृषि विज्ञान केन्द्र, अररिया के द्वारा फसल उत्पादन एवं फसल संरक्षण, उद्यानिकी विकास, पोषक मूल्यों के संरक्षण, मूल्य संवर्द्धन एवं आय सृजन, उद्यामिता विकास, मत्स्य पालन एवं पशुपालन एवं डेयरी प्रबंधन आदि विषयों पर विभिन्न अवधि के प्रशिक्षण एवं प्रत्यक्षण आयोजित किये गये।

मक्का, जिसका वानस्पतिक नाम Zea mays है, एक प्रमुख खाद्य फसल है, जिसे भुट्टे की शक्ल में भी खाया जाता है। मानव सभ्यता में मक्का पहला महत्वपूर्ण फसल था जो वर्णसंकर से प्रभावित हुआ। यह विविधमोसम एवं पर्यावरण में दुनिया के सर्वधिक भागों में पैदा किया जाने वाला फसल है जो सर्वाधिक पैदावार और उत्पादन क्षमता वाला खाद्यान्न है। इसकी खेती लगभग 166 देशों के 165 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में होती है। और इसकी उत्पादकता 5.1 टन/हेक्टेयर है। भारत के अधिकांश मैदानी भागों से लेकर 2700 मीटर ऊँचाई वाले पहाडी क्षेत्रो तक मक्का सफलतापूर्वक उगाया जाता है। इसे सभी प्रकार की मिद्दीयों मे उगाया जा सकता है तथा बलुई, दोमट मिद्दी मक्का की खेती के लिये बेहतर होती है। मकका एक ऐसा खाद्यान्न है जो मोटे अनाज की श्रेणी में आत है परन्तु इसकी पेदावार पिछले दशक में भारत में एक महत्वपूर्ण फसल के रुप में मोड़ ले चुकी है क्योकि यह फसल सभी मोटे व प्रमुख खाद्यान्नो की बढोतरी दर में सबसे अग्रणी है। आज जब गेहूँ और धान में उपज बढ़ाना कठिन होता जा रहा है, मक्का पैदावार के नये मानक प्रस्तुत कर रही है। यह फसल भारत की भूमि पर 1600 ई० के अंत में ही पैदा होना शुरु हो गया था। और आज भारत संसार के प्रमुख उत्पादक देशों में सामिल हैं। जितने प्रकार की मक्का भारत में उत्पन्न की जाती है, शायद ही किसी अन्य देश में उतने प्रकार की मक्का उत्पादित की जा रही है। परन्तु भारत मक्का के उपयोग में काफी पिछड़ा हुआ है जब की अमेरिका में यह एक पूर्णतया औद्योगिक फसल के रुप में उत्पादित की जाती है और इससे विविध औद्योगिक पदार्थ वनाये जाते हैं। भारत मे मक्का का महत्व केवल एक खाद्यान्न फसल के रुप में है जब की संयुक्त राज्य अमेरिका में मक्का का अधिकतम उपयोग स्टार्च बनाने के लिए किया जाता है।

भारत में मक्का की खेती जिन राज्यों में व्यापक रुप से की जाती है उनमें आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, राजस्थान, तथा उत्तर प्रदेश इत्यादि प्रमुख हैं। राजस्थान में मक्का का सर्वाधिक क्षेत्रफल है व आन्ध्रा में सर्वाधिक उत्पादन होता है। परन्तु मक्का का महत्व बिहार में वहुत अधिक है। भारत के खाद्यान्नों में मक्का का उत्पादन दर बहुत अधिक है जिसकी खेती 5 प्रतिशत क्षेत्रफल में होती है और यह विश्व भर में पैदा किये जाने वाले मक्का का 2.4 प्रतिशत है तथा भारतीय कृषि के सकल घरेलू उत्पाद में इसकी 155 विलियन रुपये कि हिस्सेदारी है।

नवीनतम रिपोर्ट (2010–11) के अनुसार, भारत में मक्का उत्पादन का क्षेत्रफल, मक्का का उत्पादन और उत्पादन दर क्रमशः 8.55 मिलियन हेक्टेयर, 21.74 मिट्रीक टन और 2.54 टन/हेक्टेयर है। मक्का का उत्पादन 1950–51 में मात्र 1.73 मिट्रीक टन से 13 गुना बड़ कर 2010–11 में 21.74 मिट्रीक टन हो गया। व्यापारिक अनुमानों के अनुसार 2050 तक मक्का कि माँग 42 मिट्रीक टन तक हो जायेगी। मक्का का स्थान चावल तथा गेहूँ के बाद तीसरा है। यद्यपि मक्का की खेती के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में भारत का चौथा स्थान है परन्तु इसका उत्पादन विश्व के ओसत उत्पादन से बहुत कम है। खाद्यान्न, चारा और औद्योगिक प्रयोग के रुप में बढती हुई माँग को देखते हुये। मक्का अगले कुछ दशको में क्षेत्रफल एवं उत्पादन के दृष्टि से महत्वपूर्ण अनाज होगा। हरित क्रांति के जनक प्रसिद्ध नोवेल पुरस्कार विजेता डॉ. नॉर्मन ई. बोरलॉग ने इसे भविष्य की फसल के रुप में उल्लेख किया है। यह भविष्यवाणी की गई है कि 2025 तक विश्व में मक्का की माँग गेहूँ और चावल से अधिक हो जायेगी।

मक्का की कुछ मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैः–

- मक्का का उत्पादन कृषि के लिए विविध पर्यावरणीय स्थितियों में विश्वभर में किया जाता है।
- मक्का में विटामिन ए, सी और ई, आवश्यक खनीज प्रचुर मात्रा में होते हैं और इसमें 9 प्रतिशत होता है।
- इस अनाज का मनुष्य के लिए विश्वभर में 116 मिलियन टन से अधिक उपभोग है।
- इस अनाज आश्चर्यजनक रुप अधिक टिकाऊ होता है।
- इसका 3500 से अधिक अनाज उत्पादों के लिए प्रयोग किया जाता है।

सकल खाद्यान्न उत्पादन में मक्का की भागीदारी 22 प्रतिशत है। पिछले पाँच वर्षों में मक्का के क्षेत्रफल में 2.2 प्रतिशत तथा उत्पादन में 2.1 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी है जो कि अन्य धान्य फसलों की तुलना में बहुत ज्यादा है।

उपयोगिताः

अब तक भारत में मक्का का भोजन के रुप में उपयोग गेहूँ एवं चावल के मुकाबले बहुत कम होता था तथा मुख्यतः आदिवासी एवं गरीब तबकों तक ही सीमित था, जाने पर भोजन की थाली में इसका स्थान बढ़ रहा है। उच्च प्रोटीन गुणवत्ता वाली किस्मों (शक्तिमान–1, शक्तिमान–2, शक्तिमान–3, शक्तिमान–4 आदि) में अब तक प्रचलित किस्मों के मुकाबले प्रोटीन तथा आवष्यक अमीनो एसिड, ट्रिप्टोफॉन एवं लाइसिन काफी अधिक मात्रा में पाया जाता हैं। इसके अतिरिक्त राजेन्द्र शंकर मक्का–1 तथा 2, DMH–117, लक्ष्मी तथा देवकी आदि अच्छा उत्पादन देने वाली किस्मे अररिया के किसानो के द्वारा लगाई जाती है। अपने विशिष्ट गुणों के कारण इससे बने उत्पादों को शिशु आहार, गर्भवती महिलाओं, दूध पिलाने वाली माताओं एवं स्कुली बच्चों के लिए पौष्टिक आहार के रुप में प्रयोग किया जाता है। क्वालिटी प्रोटीन मक्का की अहमियत खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए भी है। क्यो की इसमे सम्पुर्ण रुप से संतुलित अमीनो अम्ल पाये जाते है। इसके उत्पाद का ग्रामीण उद्यमशीलता के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान होता हैं।

खाद्यान्न फसलों में मक्का का तीसरा स्थान हैं। भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था में मक्का का एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में मक्का की खेती लगभग 67 लाख हेक्टेयर में होती है मक्का उत्पादन में विहार राज्य का प्रमुख स्थान है। यानी बिहार प्रमुख मक्का उत्पादक राज्य है। यहाँ पर मक्के कि खेती साल भर की जाती है। मक्के की खेती राज्य में करीब 6.89 लाख हेक्टेयर में कि जाती है। कुल उत्पादन राज्य में करीब 28.34 लाख टन तथा उत्पादकता 41.13 क्वीन्टल प्रति हेक्टेयर है। रबी मक्के की खेती बिहार में खरीफ मक्के की तुलना में ज्यादा रकवे में की जाती है। तथा इस मोसम में जीवन चक्र 140–160 दिनों तक का हो जाता है। अतः इस समय सिचाई की सुबिधा निश्चित करनी होती है। इसकी औसत उपज 60 से 65 क्वि० दाना प्रति हेक्टेयर है। बिहार में जो मक्का उपजाया जाता है उसकी 50 प्रतिशत मात्रा का उपयोग भोजन के रुप में व्यवहार होता है। मानव आहार में खाद्यान्न से मिलने वाले प्रोटीन का 50–60 प्रतिशत तक मक्का से ही प्राप्त होता है। करीव 35% मात्रा का मवेशी, मुर्गी, सूअर, मछली आदि के दाने के रुप में उपयोग किया जाता है। 11% मक्के का औद्योगिक उपयोग होता है 3% मात्रा का दलिया, सत्तू, कार्नफ्लेक्स आदि के रुप में उपयोग किया जाता है। एक प्रतिशत मात्रा का बीज आदि के रुप में उपयोग किया जाता है। इससे स्वास्थ्य के लिए उत्तम खद्याय तेल भी प्राप्त किया जाता है।

मक्का से विविध व्यंजन भी बनाये जा सकते हैं जैसे मक्का की करी बनाने की विधि नीचे दी गयी है।

आवश्यक सामग्रीः

स्वीट कॉर्न – 200 ग्राम
टमाटर – 2–3
हरी मिर्च –2
अदरक – 1 इंच लम्बा टुकडा
काजु – 8–10
खसखस – 1 टेबुल स्पून
मूँगफली के दाने – 50 ग्राम (2 अेबल स्पून)
घी या तेल – 11/2 टबिल स्पून
जीरा – 1/2 छोटी चम्मच
नमक – स्वादानुसार (आधा चम्मच से थोड़ा अधिक)
लाल मिर्च पाउडर – 1–2 पिंच
गरम मसाला – 1/4 छोटी चम्मच
हरा धनियां – 1 टेबिल स्पून (बारीक कटा हुआ)

स्वीट कार्न को पानी में घोल कर रख लीजिये। टमाटर, हरी मिर्च एवं अदरक को मिक्सी से बारीक पीस लीजिये। कढ़ाई में 2 छोटी चम्मच तेल डाल कर गरम करें, मूँगफली के दाने, खसखस के दाने एवं काजू डाल कर हल्का ब्राउन होने तक भून लें। इन भूने हुए मसालों को टमाटर के पेस्ट में डालकर पीस दें। कुकर में बचा हुआ तेल डाल कर गरम करें, गरम तेल में, जीरा, हल्दी पाउडर, धनियां पाउडर डाल दें। मसाले को 1–2 बार चम्मच से चलायें, अब इस मसाले में, टमाटर, काजू का पेस्ट डाल कर तब तक भूने, जब तक कि मसाले में दाने न बन जाय और मसाले से तेल अलग न होने लगे। भुने हुए मसाले में स्वीट कार्न, नमक और लाल मिर्च डाल कर 2 मिनट तक चमचे से चलाकर भूनिये, एक छोटा गिलास पानी डाल कर कुकर बन्द कर दीजिये। कुकर में एक सीटी आने पर गैस बन्द कर दीजिये। कुकर का प्रेशर खतम होने के बाद कुकर खोलिये और सब्जी में गरम मसाला डाल दीजियें। स्वीट कार्न की सब्जी तैयार है। सब्जी को बाउल में निकाल लीजिये और हरे धनियां से सजाइये गरमा गरमा स्वीट कार्न की सब्जी चपाती, नान परांठे या चावल किसी के भी साथ परोसिये और खाइये।

स्वीट कॉर्न या मकई भरा पराठा

सामग्रीः

- गेहूँ का आटा 2 कप
- मकई के दाने उबले हुए एक कप
- प्याज एक बारिक कटा
- हरी मिर्च 2 बारिक कटी हुई
- स्वादानुसार नमक
- हींग एक चुटकी
- जीरा 1/2 चम्मच
- चाट मसाला 1/2 चम्मच
- गरम मसाला 1/2 चम्मच
- तेल 1/2 कप

विधिः

- उबले हुए मक्का के दानो को मिक्सी में बारिक करके पीस ले।
- कड़ाही में एक चम्मच तेल गर्म करें, हींग और जीरा डाले पकने के बाद।
- बारीक कटा प्याज डाले, दो मिनट भूनने के बाद हरी मिर्च और पिसा हुआ मक्का का पेस्ट डाल कर सूखा होने तक भूनें।
- फिर चाट मसाला, गरम मसाला, नमक भी मिला दे।
- आंच से उतार कर ठंडा होने दे।
- आटे में नमक और 2 चम्मच तेल मिलाकर गूंथ लें। आधा घंटे के लिए गीले कपडे से ढक कर रख दे।

- ✶ इसकी लोइया बनाकर मकई का भरावन भरकर गोल रोटी के आकर का बेले।
- ✶ तवे को गरम करके दोनों तरफ तेल लगाकर गुलाबी होने तक सेंके।
- ✶ इसे दही एवं अचार के साथ गरमा–गरम परोसें।

वर्ष 2010–11, 2011–12, 2012–13 में रबी मक्का का आच्छादित क्षेत्र (हे० में)

वर्ष	फसल–मक्का आच्छादित क्षेत्र	फसल गेहूँ
2010–11	6550	61100
2011–12	7453	55152
2012–13	22689	55159
2013–14	22483	–

मक्का के साथ आलू, मक्का के साथ मूली, तथा मक्का के साथ मटर आदि की बुआई कर अधिक उपज प्राप्त किया जा सकता है। मक्का की पैदावार एवं गुणवत्ता में कमी के कई कारण हो सकते हैं, जैसे समय से बुबाई न होना इसके अलावा फसल पर बीमारियों द्वारा भी इसकी पैदावार में भारी कमी हो जाती है। एक शोध के अनुसार प्रतिवर्ष विश्व के उत्पादन का लगभग 13 प्रतिशत नुकसान भारत में 9 प्रतिशत बीमारियों द्वारा ही जाता है।

अररिया के विभिन्न प्रखण्ड़ो खासकर अररिया, फारबिसगंज, रानीगंज, जोकीहाट में मक्का की खेती अधिकांश क्षेत्र में की जा रही है। चकई के महेश प्रसाद विश्वास, रानीगंज के सुनील आर्या, राजेन्द्र प्रसाद शाह, कमलदाहा के मो० इमरॉन खॉन, ठेकपुरा के जगदीश यादव के अनुसार मक्का की खेती अररिया के लिए वरदान है क्योंकि इससे प्रति हेक्टर कम से कम 75–80 हजार रुपये का मुनाफा दर्ज किया गया है। इस क्षेत्र में मक्का की बढ़ती मांग को देखते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र, अररिया के वैज्ञानिकों के द्वारा समय–समय पर प्रशिक्षण, प्रत्यक्षण एवं तकनीकी सलाह किसान के खेत तक पहुँचाई जा रही है। अतः यह कहा जा सकता हे इस बदलते परिवेश में गेहूँ की तुलना में मक्का की खेती अधिक लाभकारी होने के कारण अररिया के अधिकांश किसान इसे अपना रहे हैं।

प्रेमी, पागल, और कवी एक ही चीज से बने होते हैं।

– भगत सिंह

कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता वृद्धि में कृषि विज्ञान केन्द्र की भूमिका

ए. के. मैती

सेवा भारती कृषि विज्ञान केन्द्र, पश्चिमी मेदिनीपुर (पश्चिम बंगाल)

सेवा भारती कृषि विज्ञान केन्द्र देश के सबसे पुराने कृषि विज्ञान केन्द्रों में से एक है। इसकी स्थापना वर्ष 1976 में की गई थी। सेवा भारती कृषि विज्ञान केन्द्र झारग्राम उप.संभाग के जम्बोनी ब्लाक के कापगारी गांव में है जो झारखंड और उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्र में है और जिले की लाल लैटेराइट (मखरला) मृदा क्षेत्र में आता है। अपने संचालन के 38 वर्षों से भी ज्यादा समय में सेवा भारती कृषि विज्ञान केन्द्र ने पश्चिमी मेदिनीपुर तथा इसके बाहर के जिलों में व्यापक विकास के लिए आपने आपको एक एजेंसी के रूप में स्थापित किया है। कृषि और संबद्ध ग्रामीण प्रौद्योगिकियों पर प्रशिक्षण, खेत परीक्षण तथा प्रदर्शन संबंधी अधिदेशित कार्यकलापों के अलावा, सेवा भारती कृषि विज्ञान केन्द्र ने सरकार द्वारा वित्तीय रूप से समर्थित विकासात्मक परियोजनाओं (अर्थात एसजीएसवाई, एनएचएम, आरकेवीवाई, नरेगा, बीज ग्राम आदि जैसी योजनाओं के अंतर्गत) तथा अन्य वित्त पोषण एजेंसियों जैसे नाबार्ड, एनएफडीबी, एटीएमए आदि का सफलतापूर्वक कार्यान्वयन किया है। इन परियोजनाओं में ग्रामीण जनता के क्षमता निर्माण तथा उनकी टिकाऊ जीविका पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

फसलों के उत्पादन और उत्पादकता की वृद्धि

कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप से पहले किसान समुदाय को मौजूदा चावल आधारित बारानी कृषि प्रणाली से बहुत कम आय प्राप्त होती थी। सूखा संवेदनशील लाल मखरला मिट्टी वाले क्षेत्रों में स्थिति निम्नस्तरीय मृदा उपजाऊपन लहरदार भूमि बनावट के कारण और ज्यादा खराब हो गई थी। यद्यपि, किसानों द्वारा धान की खेती का उपयोग भूमि की स्थिति के अनुसार किया जाता है, फिर भी वह 15.18.5 क्विंट/हे. की निम्नस्तरीय पैदावार से संतुष्ट रहते हैं। उचित वैज्ञानिक कृषि क्रियाओं के अभाव तथा उनके बारे में जानकारी की कमी के कारण खेती योग्य भूमि ('मोनो.क्राप') एकल फसलीकरण भूमि के रूप में ही रह गई है।

इस संबंध में, एस.बी.के.वी.के. ने सूक्ष्म कृषि-पारिस्थितिकीय प्रणाली का मूल्यांकन किया और उच्च, मध्यम तथा निम्न भूमि स्थितियों के लिए कृषि प्रणाली आधारित उचित धान किस्मों को शुरू किया और उत्पादन को क्रमशः 36 क्विं. 41.5 क्विं. तथा 39 क्विं. प्रति हेक्टेयर तक बढ़ाया। इसके अलावा, धान आधारित एकल फसलीकृत भूमि का उपयोग प्रगुणित फसलीय प्रणाली के लिए बढ़ाया गया। इसमें लगभग 5200 हे. खेती योग्य भूमि में 182 प्रतिशत फसलीकरण सघनता के साथ सरसों, मूंगफली, तिल, मूंग, मलका, उड़द तथा मसूर की उन्नत किस्मों का बढ़ावा दिया गया। इससे लगभग 1560 किसान परिवार

लाभान्वित हुए तथा उनकी आय में 12-15 प्रतिशत की वृद्धि हुई। एस.बी.के.वी.के. ने लगभग 1 : 2.45 के लाभ लागत अनुपात को सुनिश्चित करते हुए कृषि प्रणाली को धान-आलू/सब्जियांदृतिल के रूप में परिष्कृत किया गया। इसके अलावा, उन्नत कृषि उपकरण और मशीनरी के उपयोग, उर्वरकों, कीटनाशकों तथा नाशीजीव नाशकों के उचित और संतुलित उपयोग को शामिल करते हुए खेती की लागत को कम करने के प्रयास किए गए।

इस प्रकार, इससे बेहतर लाभ लागत अनुपात प्राप्त करने, परिणामिक बीज प्राप्त करने, प्रतिस्थापन दर में 15-20 प्रतिशत की वृद्धि करने, 15 प्रतिशत उत्पाद बढ़ाने, प्रगुणित फसलीय प्रणाली की उपयुक्तता, खाद्य सुरक्षा के जोखिम को कम करने में मदद मिली है।

खाकी कैंपबेल डकलिंग (बत्तख पालन) का प्रसार

गांवों में बत्तख पालन एक सामान्य कार्य है। लेकिन यह उन परिवारों तक सीमित है जिनके नजदीक तालाब हैं। बत्तख पालन में धीमी वृद्धि, निम्नस्तरीय अंडजनन (75.80 अंडे/वर्ष), पानी के साथ अनुकूलनशीलता मुख्य बाधाएं थी। एस.बी.के.वी.के. ने नव्वे दशक के अंत में एफ.एल.डी. के द्वारा के. सी. बत्तख को इंट्रोड्यूस किया जो अब इस जिले में और समीपवर्ती राज्यों के 10 से ज्यादा ब्लॉकों में काफी लोकप्रिय हो चुकी हैं। के. सी. बत्तख के फायदों में इसकी तीव्र वृद्धि, उच्च अंडजनन क्षमता (160.185 अंडे/वर्ष); पानी की कम जरूरत (उनके लिए छोटे मिट्टी के गड्ढे पर्याप्त हैं) जैसे लाभ हैं।

बैक यार्ड बत्तख पालन में किसी विशेष देखभाल की जरूरत नहीं होती, किसान सुबह भगवान के नाम पर कुछ आहार देकर इन बत्तखों को खुला छोड़ देते हैं और सांयकाल में वापस लाते हैं। देसी बत्तख की कम उत्पादकता से निपटने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा बैक यार्ड (प्रांगण) बत्तख पालन में के. सी. के साथ अनेक अग्रपंक्ति के प्रदर्शन आयोजित किए गए। खेतिहर महिलाओं के समूह के लिए प्रांगण बत्तख पालन पर प्रशिक्षण आयोजित किया गया। इन्हें मुख्य इनपुट के रूप में ब्रुडिड डकलिंग्स, आहार, डीवर्मर उपलब्ध कराये गये। डक प्लेग के विरूद्ध टीकाकरण तथा स्वास्थ्य देखभाल के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों द्वारा समय.समय पर दौरा किया गया। 5 माह की आयु में बत्तखों में अंडजनन शुरू हो गया था। देशी बत्तख की तुलना में के. सी. बत्तख के अंडों का आकार बड़ा होता है जिससे अधिक मूल्य प्राप्त होता है। देसी बत्तख से रुपये 3520/- की वार्षिक आय की तुलना में 20 के. सी. बत्तख से 10785/- रुपए की शुद्ध आय प्राप्त हुई। उत्साहजनक परिणामों को देखते हुए नजदीकी गांवों के किसानों और खेतिहर महिलाओं ने लागत आधार पर ब्रुडिड के. सी. डकलिंग (प्रजनित बत्तख के चूजे) की आपूर्ति के लिए अपनी मांग देनी प्रारंभ कर दी। के. सी. बत्तख का प्रांगण.पालन झारग्राम उप.संभाग के 6 ब्लॉकों, बांकुरा जिले के 1 ब्लॉक तथा झारखंड के पूर्वी सिंहभूम के नजदीकी गांवों में प्रसारित हुआ। के. सी. ड्रेक बत्तख के साथ स्थानीय बत्तख की क्रॉस.ब्रीडिंग (संकरण) द्वारा स्थानीय बत्तख नस्लों का उन्नयन किया जा रहा है। अब कृषि विज्ञान केन्द्र प्रत्येक वर्ष 300 से ज्यादा किसानों को लगभग 3000 डकलिंग्स (चूजे) की आपूर्ति करने में सक्षम है।

शामिल क्षेत्रः 3 राज्यों (पश्चिमी बंगाल, झारखंड तथा उड़ीसा) के 5 जिलों के तहत 400 गांव
लाभान्वित परिवारः 6500
जीविका सुधारः अतिरिक्त वार्षिक आय में लगभग 7000/- रुपए की वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप परिवार की पोषण सुरक्षा में वृद्धि हुई।
प्रासंगिक तथ्यः स्थानीय नस्लों की तुलना में अंडा उत्पादन में 3 गुणा वृद्धि हुई, डकलिंग जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूल, उनके रोगों के जोखिम में कमी, स्थानीय नस्ल का सुधार, मांग आधारित बत्तख नस्लों का प्रतिष्ठित संगठन।

बागवानी फसलों का प्रोन्नयन और उत्पादन

एस.बी.के.वी.के. ने पश्चिम बंगाल तथा समीपवर्ती राज्यों के जिलों में बागवानी फसलों के प्रोन्नयन तथा उत्पादन के लिए क्षमता सृजनात्मक क्षमता को सुनिश्चित करने हेतु अपने प्रयासों से किसान समुदाय तथा अन्य (स्टेकहोल्डरों) हितधारकों के बीच अपनी अच्छी प्रतिष्ठा स्थापित की है। इसके पास पादप प्रसारण तथा उत्पादन के लिए आम, मौसम्बी, अमरूद, बेर आदि के बेहतर गुणवत्ता वाले जननद्रव्य हैं।

बागवानी फसलों की खेती को बढ़ावा देने के लिए एस.बी.के.वी.के. ने पादप प्रसारण तथा नर्सरी प्रबंधन पर ग्रामीण युवाओं के क्षमता निर्माण के लिए नियमित आधार पर एक कार्यनीति को अपनाया है। इसके परिणामस्वरूप एस.बी.के.वी.के. जिले में दो सैटलाइट नर्सरी स्थापित करने में सफल हुआ। एस.बी.के.वी.के. प्रतिवर्ष सब्जी पौधद्2.5 लाख, फल पादपद्7000 तथा वन पौधद्8000 की आपूर्ति सुनिश्चित की। सैटेलाइट नर्सरी में औसत शामिल क्षेत्र–सब्जी 150 हे., फल–265 हे., वन–2000 हे. था। इसके फलस्वरूप, निम्नलिखित रूप में जीविका में सुधार हुआः सब्जियों से लगभग 7000/- परिवार की अतिरिक्त वार्षिक आय में वृद्धि हुई एवं पोषण सुरक्षा में वृद्धि हुई। फलों से अतिरिक्त वार्षिक आय के रूप में लगभग रुपये 2500 से 3000 प्रति परिवार की वृद्धि हुई; पोषण सुरक्षा की वृद्धि हुई। वन रोपण से अर्थात 5 पौध प्रति वर्ष/परिवार द्वारा फसल विविधिकरण, अवक्रमित भूमि का सुधार, संसाधन संरक्षण, पारिस्थितिकीय संतुलन से अतिरिक्त वार्षिक आय में लगभग रुपये 15000/- की वृद्धि हुई।

चूंकि जिले में लगभग 5000 हे. कृषि योग्य अपशिष्ट भूमि परती रूप में है, अतः एस.बी.के.वी.के. ने किसान समुदाय की वास्तविक समस्याओं के लिए मनरेगा, एनएचएम का लाभ लेने के इरादे से रोपण एवं संरक्षण तकनीक, स्वस्थाने नमी संरक्षण तथा मानव संसाधन विकास के उचित हस्तक्षेप के माध्यम से उद्यान विकास के तहत इस भूमि को कृषि योग्य भूमि में शामिल किया।

एस.बी.के.वी.के. द्वारा विकसित मॉडल को जिला कार्रवाई योजना के तहत लाया गया तथा अनेक हितधारकों (स्टेकहोल्डरों) द्वारा इसे अपनाया जा रहा है। अब तक एस.बी.के.वी.के. 80 हे. परती भूमि में उद्यान स्थापित करने में सफल हुआ है। परती भूमि में उद्यान से जिले के जमबोनी, बिनापुरना तथा झारग्राम ब्लॉक के 180 परिवार लाभान्वित हुए। विशिष्ट उद्यानों से वार्षिक आय में लगभग रु. 20,000-25,000/हे. की वृद्धि हुई तथा पोषण सुरक्षा जोखिम में कमी आई। एस.बी.के.वी.के. द्वारा अंतः संवर्धन फसल के रूप में

हल्दी/सब्जी की खेती के माध्यम से किए गए प्रयोग व प्रदर्शन से अवक्रमित भूमि सुधार, संसाधन संरक्षण, पारिस्थितिकीय संतुलन में सुधार लाकर अतिरिक्त वार्षिक आय वृद्धि को बढ़ाने का नया मार्ग प्रशस्त हुआ।

कृषि उद्यमशीलता विकास

ग्रामीण युवा तथा एस.एच.जी. सदस्यों के लिए कौशल विकास प्रशिक्षण से खेतिहर समुदाय की आय बढ़ाने के लिए बेहतर जीविका अवसर पैदा हुए हैं और किसान समुदाय बेहतर सेवा प्राप्त कर रहे हैं। कृषि प्रणाली आधारित उद्यमों ने ग्रामीण युवा तथा स्व-सहायता समूहों (एस.एच.जी.) के लिए आय का एक विश्वसनीय स्रोत सृजित किया है।

अनेक व्यवसायों में से पैरा-वैट, मछली बीज उत्पादन, साल पत्ती प्लेट बनाना, वर्मी कम्पोस्टिंग तथा कृषि उपकरणों की मरम्मत और रख-रखाव पर विकसित प्रशिक्षण मॉडल को प्रतिभागियों द्वारा उद्यमशीलता विकास के टूलों के रूप में अपनाया गया। गैर सरकारी संगठनों, सरकारी संगठनों तथा अन्य हितधारकों जैसी संस्थाओं से इस पाठ्यक्रम के लिए आवेदन किए जाने से इस प्रशिक्षण मॉडल की महत्ता तथा उसके प्रति सकारात्मक रूझान का पता लगा है।

इस मॉडल के द्वारा प्रशिक्षित 340 प्रतिभागियों में से लगभग 42 पैरा-वैट प्रशिक्षणार्थियों द्वारा किसानों को सेवाएं प्रदान की जा रही हैं और औसत रूप में रु. 8,000/– प्रतिमाह आय प्राप्त की जा रही है। लगभग 90 युवाओं द्वारा मछली फिंगरलिंग का उत्पादन किया जा रहा है और क्षेत्र और नजदीकी राज्यों के किसानों को मछली फिंगरलिंग की आपूर्ति की जा रही है जिससे रु. 25,000/– की औसत वार्षिक आय प्राप्त की जा रही है।

साल लीफ प्लेट मेकिंग, कृषि उपकरणों की मरम्मत तथा रख-रखाव और वर्मीकम्पोस्टिंग को अपनाने से क्रमशः रु. 1500/–, रु. 2500/– तथा रु. 1700/– की मासिक आय प्राप्त की गई। इसके अलावा श्री रूपक घारा, मैसर्ज बसुंधरा सीड ने बीज उत्पादन तथा विपणन द्वारा रु. 7,00,000/– प्रतिवर्ष की सुनिश्चित आय प्राप्त कर कृषि आधारित उद्यमी का एक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है।

मृदा एवं जल संरक्षण

निम्नस्तरीय मृदा उपजाऊपन तथा सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध न होना जिले की कृषि उत्पादन प्रणाली में मुख्य समस्याएं हैं। प्रतिकूल जलवायु स्थितियों ने स्थिति को और ज्यादा खराब किया है। इस संबंध में एस.बी.के.वी.के. ने जिले में, विशेष रूप से, लाल और मखरला मिट्टी वाले क्षेत्रों में मृदा एवं जल संरक्षण क्रियाओं में मुख्य भूमिका निभाई है।

सीपेज टैंक के मॉडल को एक प्रभावशाली उप सतह जल संग्रहण ढ़ांचे के रूप में काफी उपयोगी पाया गया। इससे कमांड क्षेत्र की 2.5 एकड़ भूमि में 300 फसलीकरण सघनता सुनिश्चित हुई है। इसके अलावा, खेत में मेड़ बनाने, चैक-डैम, डब्ल्यूएचएस, वानस्पतिक उपाय तथा पलवार बनाने जैसे प्रदर्शनों के लिए एस.बी.के.वी.के. के प्रयासों से स्वस्थाने नमी संरक्षण तथा इस सूखा संवेदी एवं मखरला मिट्टी वाले क्षेत्र में वर्षा जल संग्रहण के लिए उन्नत प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप को सही ठहराया है।

एसडब्ल्यूसी प्रौद्योगिकियों को नार्बाड, जिले के संबंधित विभागों द्वारा प्रारंभ किए गए जल संभर विकास कार्यक्रम में शामिल करने के लिए और अधिक परिष्कृत किया गया। फसल विविधीकरण पर जल मांग के इष्टतम उपयोग के लिए योजना निर्माताओं, जिले के संबंधित विभागों तथा अन्य हितधारकों द्वारा सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली (ड्रिप और स्प्रिंकलर) को अपनाया गया।

इस अवधि तक एस.बी.के.वी.के. द्वारा प्रतिभागी विकास के तहत सीपेज टैंक के जल संग्रहण ढांचे की 45 यूनिट, भूमि बनावट तथा फील्ड खेत बंडिंग 56 हे., चैक.डैम की 8 यूनिट, तालाब का नवीकरण और निर्माण. 125 हे..एम, 250 प्रतिशत फसलीकरण सघनता के लिए सुनिश्चित सिंचाई के तहत लगभग 234 हे. भूमि तैयार करने से संबंधित कार्य सृजित किए गए।

किसान संगठनों का विकास

पश्चिमी मेदिनीपुर जिले के सभी 29 ब्लॉकों के उपभोक्ताओं तक कृषि प्रौद्योगिकी के प्रसार के लिए लैब.टू.लैंड के परस्पर (प्रयोगशाला से खेत के बीच) अंतराल को कम करने के लिए जमीनी स्तर पर काम करने वाले संगठनों की अत्यंत जरूरत है। इस संबंध में एस.बी.के.वी.के. ने नाबार्ड तथा बैंकों की सहायता और सहयोग से और अनेक फील्ड स्तर के संगठनों जैसे किसान क्लब तथा एस.एच.जी. को स्थापित किया गया है। वर्तमान में 40 किसान क्लब और 26 एस.एच.जी. द्वारा नियमित रूप से एस.बी.के.वी.के., बैंक तथा संबंधित विभागों के माध्यम से किसान समुदाय को प्रौद्योगिकीय विपणन एवं ऋण सहायता प्रदान की जा रही है।

इन संगठनों द्वारा एस.बी.के.वी.के. के मार्गदर्शन में प्रशिक्षण कार्यक्रमों, किसान स्कूलों, किसान मेलों, ज्ञानवर्धन (एक्सपोजर) दौरा आदि का नियमित आयोजन किया जा रहा है। इसके अलवा, जिले के संबंधित विभागों द्वारा भी अपने विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए इन क्षमताओं तथा सृजनात्मक संगठनों का उपयोग किया जा रहा है।

मेरे लिए दरवाजे खोलो, जैसे मैंने खुद को तुम्हारे लिए खोला है।

– जीसस क्राइस्ट

गन्ने में समेकित रोग प्रबंधन

एस. एन. सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, पश्चिम चम्पारण (बिहार)

नकदी फसलों में ईख बिहार की प्रमुख फसल हैं। बिहार राज्य में 57.12 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि में से मात्र 2.65 लाख हेक्टेयर भूमि में गन्ने की खेती की जाती है। पश्चिम चम्पारण जिला में 2.78 लाख हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि में से करीब 1.0 लाख हेक्टेयर भूमि में गन्ने की खेती की जा रही है। ईख उत्पादन पर ही चीनी उद्योग, गुड़, खंरसारी, कागज, इथेन, विद्युत उर्जा जैसे कई उद्योग निर्भर हैं। प्रति ईकाई अधिक ईख तथा चीनी उत्पादन के लिए फसल को रोगों से बचाना आवश्यक है क्योंकि इनके आक्रमण के फलस्वरूप उपज तथा चीनी की मात्रा में काफी कमी हो जाती है। कभी–कभी किसी क्षेत्र विशेष में रोगों का प्रकोप इतना बढ़ जाता है कि ये महामारी का रूप ले लेते हैं तथा चीनी मिलों एवं किसानों के लिए संकटमय स्थिति पैदा हो जाती है। सही समय पर गन्ने में रोगों का उचित प्रबंधन कर अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। गन्ने में लगनेवाले प्रमुख रोग इस प्रकार हैः

फफूंदजनित रोग

1. लालसर (Red rot)

यह एक फफूँदजनित बीमारी है जो *कोलेट्रोइकम फैलकेटम* नामक फफूंद के द्वारा होता है। बिहार तथा उतरी भारत में यह प्रमुख रोग है। जिसके आक्रमण होने पर कई बार ईख की अच्छी किस्मों को खेती से वर्जित करना पड़ा है तथा चीनी उधोग के इतिहास में कई बार ऐसी स्थिति आ चुकी है जबकि लालसर बीमारी के चलते मिलों को बंद हो जाने की नौबत आयी थी। प्रारम्भ में रोग के कुछ लक्षण नहीं दिखाई पड़ते परन्तु कुछ दिनों के बाद पौधों की उपर से तीसरी–चौथी पत्तियॉ सुनहरे रंग लेकर किनारों से सूखने लगती है। उसमें मटमैले धब्बे पैदा हो जाते हैं। इसके बाद पूरा धड़ पत्तियों सहित सूख जाता है। इस प्रकार सारे खेत में सूखे और हरे पौधे दिखाई पड़ते हैं। रोग ग्रस्त ईख को चीरने पर गुददे में लाल धब्बे दिखाई पड़ते हैं जिनके बीच–बीच सफेद द्वीप सा दिखाई देता है। रस में विशेष प्रकार की खट्टी महक आने लगती है। अगस्त–सितम्बर माह में रोग का प्रकोप सबसे अधिक होता है।

रोग का प्राथमिक प्रसार बीज से होता है। रोग ग्रस्त कटे हुए खेतों में पड़े टुकड़ों तथा पत्तियों में रोग के बीजाणु अच्छी तरह पलते हैं। रोग ग्रस्त पौधों पर भी बीजाणु रहते हैं और वर्षा एवं सिंचाई के पानी तथा हवा के झोकों के द्वारा स्वस्थ खेतों में पहुँच जाते हैं। ये छिद्रक कीड़ों द्वारा किए गए तथा अन्य आघात भागों पर भी स्वस्थ पौधों को आक्रमण करते हैं। मध्य अप्रैल तक बीमार पौधों के पत्तों की मध्य नाड़ियों में मटमैले धब्बे बन जाते है, जहॉ बीजाणु अनुकूल वातावरण में पैदा होकर दूसरे स्वस्थ पौधों को आक्रान्त करते हैं। इन पौधों में इस रोग का लक्षण जून के अंत या जुलाई के आरम्भ से दीखने लगते हैं।

2. कलिका रोग (Smut)

इसकी भी उत्पत्ति एक फफूँद से होती है जिसे *अस्टिलैगो सिटैमिनिया* कहते हैं। इस रोग का प्रकोप अप्रैल के आरम्भ में शुरू होकर जून के अंत तक काफी अधिक हो जाता है, परन्तु वर्षा के आरम्भ होते ही इसके आक्रमण में कमी पायी जाती है। वर्षा ऋतु के बाद इस रोग की एक और लहर आती है लेकिन इसका असर बहुत कम होता है। रोग ग्रस्त ईख के उपरी भाग में चाबुकनुमें काले डंठल निकलते है जो कई फीट लम्बे और मुड़े हुए होते हैं और प्रारम्भ में एक सफेद पतली झिल्ली से ढ़के रहते हैं, जिसके फटने पर असंख्य बीजाणु निकल कर बीमारी को फैलाते हैं। आक्रान्त ईख पतली हो जाती है और उसका रस लुप्त हो जाता है। यह रोग बहुधा रोग ग्रस्त ईखों को रोपने से होता है। खुँटी फसल में इस रोग का प्रकोप अधिक देखा जा रहा है।

3. सूखा रोग (Wilt)

यह एक फफुँदजनित बीमारी है जो *फ्यूजेरियम सैचराई* द्वारा होता है। लालसर रोग की अपेक्षा इससे नुकासान कम हेाता है यह बहुधा लालसर रोग के साथ पाया जाता है। रोग ग्रस्त पौघों की वृद्धि रूक जाती है। पत्ते सूखने लगते हैं, ईख के डंठल हल्के तथा खोखले हो जाते हैं और चीरने पर भीतर का गुदा हल्का लाल या मटमैला रंग का दिखाई पड़ता है। रोग की अंतिम अवस्था में गुदा सूखकर खोखला हो जाता है। जिसके अंदर सफेद रूई जैसे फफूँद नजर आते हैं।

4. गलित शिखा रोग (Top rot)

इस रोग की उत्पति *फ्यूजेरियम योनिलिफारमी* के द्वारा होती है। इस रोग का प्रकोप पूरे बरसात भर रहता है। बरसात के बाद इस रोग का आक्रमण घट जाता है या अधिकांश पौधे रोग मुक्त हो जाते हैं। इसके आक्रमण से ईखों की वृद्धि रूक जाती है। अधखुले पौधे के निचले भाग में लाल–लाल धब्बे दिखाई पड़ते हैं। बाद में इन धब्बों का रंग गाढ़ा हो जाता है तथा इन स्थानों पर पत्तियां फट कर टूट जाती है।

शाकाणुजनित रोग

1. लालधारी (Red stripe)

इसकी उत्पत्ति एक शाकाणु *स्यूडोमोनास रूबरीलिनिएन्स* से होती है। इस रोग का प्रकोप अप्रैल के आरम्भ में शुरू होकर जून के अंत तक काफी अधिक हो जाता है, परन्तु वर्षा के आरंभ होते ही इसके आक्रमण में कमी पाई जाती है। सबसे पहले पत्तियों पर जल आसिक्त (Water soaked) उजली लम्बी धारियॉ जो चौड़ाई में 1 मि.ली. तथा लम्बाई में 5 से 100 मि.मी. होती है बनती है, बाद में ये धारियॉ गहरे लाल रंग की हो जाती है। पूरे पत्तों पर पतली तथा लम्बी लालधारियों का रहना इन रोग की मुख्य पहचान है। कभी कभी दो या कई धारियॉ आपस में एक साथ मिल जाती है जिससे बड़ा धारी (band) का निर्माण होता हैं। रोग की प्राथमिक अवस्था में छोटी छोटी हरी धारियॉ होती है जो बाद में चमकीली लाल होकर भूरे रंग की हो जाती है। नयी पत्तियों पर इसका प्रकोप ज्यादा होता है।

2. पर्ण झुलसा रोग (Leaf scald)

यह एक शाकाणु जनित रोग है जो *जैन्थोमोनस एलबिलिनिएन्स* के द्वारा होता है इसका आक्रमण अप्रैल–मई से शुरू होकर फसल के अंत तक पाया जाता है। प्रारम्भ में नयी पत्तियों पर उजली–उजली पतली धारियॉ नजर आती है। बाद में ये धारियॉ आपस में मिलकर चौड़ी हो जाती है तथा आक्रान्त पत्तियों का सूखना पत्राग्र एवं किनारे से शुरू हो जाता है। पत्तियॉ अंदर की ओर सिकुड़ जाती है और सूख जाती है। पूरा अगोला एक अर्धछत्र का निर्माण करता है जो दूर से ही पहचाना जा सकता है। चीरने पर गुदे का रंग धूमिल मालूम पड़ता है तथा उसमें विद्यमान रेशा का रंग गहरी कथई रंग का होता है।

विषाणु जनित रोग

यद्यपि इस समय बिहार में इन रोगों के कारण कोई विशेष क्षति नहीं हो रही है, भविष्य में इसके प्रकोप में वृद्वि होने पर गंम्भीर स्थिति पैदा हो सकती है। अतः जहॉ भी ये पाये जाएँ, इनका अविलम्ब नियंत्रण करना परमावश्यक है। कई वर्षों से तीन प्रकार के विषाणु रोग सीमित रूप से किसी किसी क्षेत्रों में दिखाई दे रहे हैं। ये हैं:

1. शुली रोग (Spike)

साधारणतया यह वर्षा के प्रारम्भ होने के बाद दिखाई पड़ता है। रोग ग्रस्त ईखों की पत्तियॉ और अन्तःगाठें भिन्न भिन्न मात्रा में छोटी हो जाती है। साथ ही आक्रान्त भागों की ऑखे अंकुरित हो जाती है। पत्तियों के छोटे होने के कारण अन्तःगाठें पूर्णतया ढॅक नहीं पाते। रोग की उग्रावस्था में ईख की लगभग सभी ऑखे अंकुरित हो जाती है और आक्रान्त ईख एक शूली के समान दिखाई देता है। आक्रान्त भाग पर ईख टेढ़ा हो जाता है। इस रोग का प्रसार रोग ग्रस्त बीज के द्वारा होता है।

2. तृणमय प्ररोह रोग (Grassy shoot)

इस रोग के प्रकोप से ईख की पत्तियॉ संकीर्ण तथा छोटी छोटी हो जाती है जिससे आक्रान्त पौधे का झाड़ीनुमा हो जाना इस बीमारी का मुख्य लक्षण है। रोग की उग्रावस्था में पत्तियॉ ऊपर की ओर से सूखने लगती है और पौधे मर जाते हैं। इसका भी प्रसार रोग ग्रस्त बीज के द्वारा होता है।

3. मोजैक (Mosaic)

इस रोग का लक्षण प्रारम्भिक अवस्था में गन्ने की नई पत्तियों पर दिखाई पड़ते है। आक्रांत पत्तियों पर ढेरों संख्या में पीले छल्ले आकार के धब्बे बन जाते है जो आकार में अण्डाकार या गोलाकार होते है और पत्तियों पर पूरे लम्बाई में फैल जाते हैं। आक्रान्त पत्तियों की हरीतिमा समाप्त हो जाती है और पौधे पीले दिखाई देने लगते है। पौधे कमजोर हो जाते है तथा गन्ने की लम्बाई घट जाती है और गन्ना पतला हो जाता है जिसके चलते उपज पर काफी बुरा प्रभाव पड़ता है।

रोग का समेकित प्रबंधन

I. गन्ना (बीज) से गन्ना तैयार होने में पूर्णतः एक साल का समय लगता हैं। अतः कोशिश ये होनी

चाहिए कि खेत में बीमारी जाए ही नहीं क्योकि ऐसा देखा जा रहा है कि एक बार बीमारी आने के बाद उसका नियंत्रण काफी मुश्किल होता है। अतः बचाव ही बेहतर सुरक्षा है।

II. सामान्यतः किसान एक रोप फसल से दो खुंटी फसल लेते हैं। खुंटी फसल तभी लेना चाहिए जब रोप फसल में कोई बीमारी न हो।

III. अगर संभव हो तो त्रिवार्षिक फसल चक्र अपनायें यानि तीन साल की अवधि में एक ही वर्ष गन्ना रोपें। अगर ऐसा संभव नहीं हो यानि पुनः उसी खेत में गन्ना लगाना हो तो तीन साल के बाद गन्ना कटाई के बाद खेत खाली छोड़ दें। गर्मी में मिट्टी पलटने वाला हल से उस खेत की जुताई कर बिना पाटा दिए छोड़ दें। जून के दूसरे पखवाड़े में ढ़ैंचा 30 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से बुआई कर दें तथा 45–50 दिन के बाद मिटटी पलटने वाला हल से जुताई कर उसे मिटटी में पलट दें और उस खेत में 250 किलोग्राम नीम, करंज, अंडी या महुआ की खल्ली प्रति हेक्टेयर की दर से छींटकर पानी भर दें ताकि वे अच्छी तरह से सड़ जाए। इस प्रकिया से मिट्टी की भौतिक एवं रसायनिक दशा में सुधार होगा, जीवांश की मात्रा बढ़ेगी, जरूरी पोषक तत्त्वों की उपलब्धता बढ़ेगी तथा जैव नियंत्रक यथा, *ट्राइकोडर्मा, बैसिलस, स्यूडोमोनस* इत्यादि की संख्या में बढ़ोतरी होगी जो पौधे को बीज एवं मिटटी जनित बीमारियों के कारकों से सुरक्षा प्रदान करेगा।

IV. पुराने मेड़ों को तोड़ लें क्योंकि रोग कारकों के बीजाणु इसमें सुसुप्तावस्था में पड़े रहते हैं और बाद में अनुकुल समय आने पर फसल को आक्रांत करते हैं।

V. जमीन (ऊंची, मध्यम, नीची, जल जमाव) के अनुसार किस्म का चुनाव करें।

VI. रोगमुक्त प्रमाणित ईख प्रभेदों की ही रोपाई करें।

VII. रोगमुक्त खेतों से स्वस्थ एवं शुद्ध बीज जो 8–10 महीनें का ही उपयोग करें।

VIII. 20 ग्राम कार्बेण्डाजिम + 2 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लिन का 10 लीटर पानी में घोल बनाकर ईख का तीन या दो आंख वाली गुल्ली को 15 मिनट के लिए डुबोकर उपचारित करने के बाद छाया में सुखाकर रोपाई करें।

IX. रोपाई के लिए कतार से कतार की दूरी कम से कम 90 सेंटीमीटर रखें ताकि वायु संचरण तथा सूर्य की रोशनी सही तरीके से पर्याप्त मात्रा में पौधे को मिल सके।

X. गन्ने की रोपाई हमेशा पूरब–पश्चिम दिशा में कतार बनाकर करें ताकि पूरबा या पछुआ हवा (अधिकतर यहीं हवायें चलती है) से पौधा को गिरने से बचाया जा सकें। अगर जरूरी हो तो स्तम्भन करकें पौधों को गिरने से बचायें।

XI. मिटटी जॉच के आधार पर अनुशंसित खाद की मात्रा का प्रयोग करें। रसायनिक खाद की जगह कार्बनिक खाद का व्यवहार करें।

XII. सिंचाई एवं जल निकासी का उचित प्रबंध रखें।

XIII. रोग ग्रस्त खेतों से होकर सिंचाई नालियॉ न बनायें।

XIV. रोगग्रस्त झूड़ों को जड़ सहित निकालकर सूखी पत्तियों एवं कटे छटे भागों के साथ जला दें एवं निकाले गए झुड़ के मिटटी को 0.5 प्रतिशत ब्लीचिंग पाउडर के घोल से उपचारित कर लें ताकि बीमारी आगे फैलने न पाये।

XV. कलिका रोग से ग्रस्त ईख से निकले हुए काले चाबुकनुमा डंठलों को कपड़े या पौलीथिन के थैले में समेटकर काट लें एवं उन्हें जला दें। उग्र प्रकोप की अवस्था में खेत की जुताई कर कोई खरीफ फसल लगावें।

XVI. रोगग्रस्त खेतों में खूँटी फसल न लें।

XVII. रोगग्रस्त खेतों की फसल को जल्द से जल्द काटकर पेराई के लिए भेज दें।

XVIII. विषाणुजनित रोगों की रोकथाम (प्रसार रोकने) के लिए मालाथियॉन या डायमेथोएट या मेटासिस्टॉक्स का 1.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में धोलकर आक्रांत फसल पर छिड़काव करें ताकि कीटों द्वारा बीमारी के प्रसार को रोका जा सके।

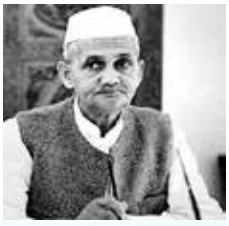

आजादी की रक्षा केवल सैनिकों का काम नहीं है। पूरे देश को मजबूत होना होगा।

– लाल बहादुर शास्त्री

बालू आच्छादित क्षेत्रों में कृषि विकास की संभावनायें

एस. के. चौधरी

कृषि विज्ञान केन्द्र, सुपौल (बिहार)

सुपौल जिला बिहार राज्य के उत्तर–पूर्व में 25^0 37^{ι} से 26^0 32^{ι} उत्तरी अक्षांश तथा 86^0 90^{ι} पूर्वी देशान्तर के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर में नेपाल राष्ट्र, दक्षिण में सहरसा, मधेपुरा जिला, पूरब में अररिया जिला एवं पश्चिम में मधुबनी जिला स्थित है। उत्तर में अवस्थित हिमालय पर्वत श्रेणियां भारत को सुरक्षा एवं प्राकृतिक सुषमा प्रदान करती है। बिहार की शोक कहलाने वाली कोसी नदी हिमालय के सत्पकोषिकी से निकलकर नेपाल क्षेत्र होते हुये इस जिले में प्रवेश करती है। यहां की मिट्टी कोशी नदी की जलीय अवसादन क्रिया की देन है। असंगठित महीन मृत्तिका से (0.002 मी0मी0 से कम आकार) अवसाद (0.002 मी0मी0 तक) से यहॉ की मिट्टी बनी है। मिट्टी के अधोस्तरीय संसतरों में पटल जैसी संरचना है जिससे यहॉ भूमिगत जल प्रवाह होता है। भूमिगत जल का स्तर भी ऊपरी सतह से 10–15 फीट की गहराई पर उपलब्ध है। क्योंकि कोसी उथली नदी है एवं इस कारण प्रत्येक वर्ष वर्षा ऋतु में बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कोसी नदी अपने साथ महीन बालू की परत बिछा देती है, जिसके कारण उपजाऊ खेत भी बंजर हो जाते है। वर्ष 2008 में विनाशकारी त्रासदी के पश्चात् जिले के बहुत बड़े भू–भाग पर 4–5 फीट बालू की परत जमा हो गयी, जिस कारण खेत अनुपजाऊ हो गये। एक आकलन के अनुसार विनाशकारी बाढ़ के कारण लगभग 18000 हेक्टेयर क्षेत्र में फसल पूरी तरह बर्बाद हो गयी एवं खेतों में 1–6 फीट तक बालू की परत जमा हो गयी। आज भी 5 प्रतिशत क्षेत्र बाढ़ के कारण नयी धार बनने से बेकार पड़े हुये है तथा धारा के बगल वाले क्षेत्रों में लगभग 20 प्रतिशत क्षेत्रों में मोटा बालू का क्षेत्र फैला हुआ है। उसके बगल के लगभग 30 प्रतिशत बालू आच्छादित क्षेत्र में 1–6 फीट तक बालू पसरा हुआ है। तथा बाकी बचे 45 प्रतिशत क्षेत्रों में 6 इंच से लेकर 1 फीट तक बालू पसरा हुआ है। बाढ़ के विभिषिका से करोड़ो का नुकसान हुआ जिसमें जानमाल, मकान, सड़क, पशुधन के साथ–साथ फसलों का भी काफी नुकसान हुआ। एक अध्ययन के अनुसार लगभग 1,25,000 हेक्टेयर क्षेत्रफल में खड़ी फसल बर्बाद हो गयी। बाद में राहत कार्य चलाये गये एवं पुनः जिन्दगी धीरे–धीरे पटरी पर लौट आई।

आज सुपौल जिले के बाढ़ प्रभावित बसन्तपुर, छातापुर, प्रतापगंज एवं राघोपुर प्रखंड के बालू आच्छादित क्षेत्रों में विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं की मदद तथा कृषि विज्ञान केन्द्र, राघोपुर, सुपौल के सम्मिलित प्रयास से धान, गेहूँ, मूंग, जूट, सब्जी उत्पादन तथा औषधीय एवं सुगंधीय पौधों की खेती हो रही है। 1 फीट तक बालू आच्छादित खेतों में किसानों द्वारा बालू को हटाकर तथा भूमि सुधार कार्यक्रम के अपनाकर खाधान्न फसलों तथा सब्जी की खेती हो रही है। 1–6 फीट बालू वाले क्षेत्रों में कृषि वानिकी के अन्तर्गत अकेसिया, यूकैल्पिटस आदि इमारती लकड़ी की बागवानी तथा 3–4 फीट बालू वाले

क्षेत्रों में लत्तरदार सब्जी जैसे कद्दू, कदीमा, तरबूज, परवल आदि की खेती हो रही है तथा हरी खाद तथा वर्मी कम्पोस्ट की मदद से खेतों को उपजाऊ बनाया गया है। सुपौल जिले की मिट्टी बलुई दोमट से चिकनी दोमट है जिसका पी0एच0 मान 6.5 से 7.8 है । उपलब्ध जैविक कार्बन 0.2–0.5 प्रतिशत, उपलब्ध नत्रजन 150–300 कि0ग्रा0/हे0, उपलब्ध स्फूर 10–35 कि0ग्रा0/हे0, उपलब्ध पोटाश 150–200 कि0ग्रा0/हे0 प्रतिवेदित है। इस जिले के मुख्य फसल पद्धति धान–गेहूँ, धान–गेहूँ–मूंग/जूट, धान–गरमा सब्जी, धान –मक्का + आलू, धान–रबी दलहन/तेलहन, मक्का–आलू/हरी सब्जी तथा धान–सरसों + गेहूँ है।

सुपौल जिला में वर्ष 2012–13 में फसल उत्पादन की स्थिति निम्न प्रकार है।

फसल	क्षेत्रफल (हे0)	उत्पादन (क्वि0)	उत्पादकता (क्वि/हे0)
अगहनी धान	80,000	16,00,000	20.00
बारो धान	17,000	6,90,000	37.00
गेंहूँ	62,000	17,36,000	28.00
रबी मक्का	7,500	3,37,500	45.00
राई/सरसों	3,000	28,500	9.50
मूंग	25,500	2,29,500	9.00
अन्य दलहन	4,000	40,000	10.00
सूरजमुखी	250	3,000	12.00
जूट	9,960	1,64,570 (बेल)	9.32

इस प्रकार सुपौल जिला में कृषि में उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि हुयी है एवं जिले के बालू आच्छादित क्षेत्रों में कृषि गतिविधियाँ बढ़ी है। बालू वाले क्षेत्रों में औषधीय एवं सुगंधीय पौधों की खेती बड़े स्तर पर हो रही है एवं एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक वर्ष मेन्था उत्पादन लगभग 2000 लीटर हो रहा है। सब्जी उत्पादन में यह खेत्र आत्मनिर्भर हो चुका है एवं यहाँ के किसान बाहर के क्षेत्रों में अपनी सब्जियाँ भेजते है। खेती के साथ–साथ पशुपालन की भी अपार संभावनाएं है एवं मधुमक्खी पालन में भली यह क्षेत्र तेजी से उभर रहा है।

मित्रता की गहराई परिचय की लम्बाई पर निर्भर नहीं करती।

– रबीन्द्रनाथ टैगोर

रोहतास जिला में फसल अवषेष प्रबंधन

शैलवाला एवं रीता सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतास (बिहार)

बिहार के 38 जिलों में से रोहतास एक जिला है जो पटना प्रमण्डल का एक प्रमुख भाग है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3907 वर्ग कि0मी0 में व्याप्त है एवं लगभग 2,42,000 हे0 में विभिन्न प्रकार की फसलों की खेती की जाती है। जिले में खेती योग्य भूमि का एक वृहत् हिस्सा करीब 66.51 प्रतिशत भाग धान–गेंहूँ फसल प्रणाली के अंतर्गत आता है। जिला में मुख्य फसल धान की खेती 1,95,000 हे0 में की जाती है एवं किसानों के बीच काफी लोकप्रिय तथा लम्बी अवधि के धान प्रभेद एम.टी.यू.–7029 लगभग 80% भूमि में किया जाता है। गेंहूँ की खेती लगभग 1,55,000 हे0 में की जाती है एवं गेंहूँ की बुवाई जीरो टिलेज तथा सीड ड्रील मशीनों की सहायता से की जाती है। लम्बी अवधि के धान के कारण गेंहूँ की बुवाई समयानुसार नहीं हो पाती है। जिसके चलते धान की कटाई में कम्बाईन्ड हार्वेस्टर की सहायता लेना जरूरी हो जाता है। इस परिस्थिति में पुआल से भरा जमीन पर जीरो टिलेज जैसा मशीन का संचालन बाधित होते रहता है। पुआल को इकट्ठा करने का उपयुक्त यंत्रों के अभाव, मजदूरों की कमी, अवशेष हटाने की लागत तथा कृषि कार्य हेतु जानवरों की कमी के कारण किसान भाई फसल अवशेष को खेत में जलाने के लिए बाध्य होते हैं। रोहतास जिला में फसल अवशेष को जलाना एवं उससे उत्पन्न क्षति का एक विश्लेषण विवरण निम्न सारणी द्वारा दर्शाया गया है।

सारणी–01: रोहतास जिले में प्रति वर्ष कुल 9,42,422 टन फसल अवशेष खेत में जलाया जाता है, जिससे हानिकारक ग्रीन हाउस गैस तथा आर्थिक क्षति इस प्रकार है।

क्र.सं0	विवरण	फसल	क्षेत्र, हे0	अवशेष उत्पादकता (टन/हे0)	उत्पादित अवशेष (टन)
1.	उत्पन्न अवशेष	धान	195000	9.0	1755000
		गेंहूँ	155000	4.0	620000
		चना	3607	1.5	5410.5
		मसूर	5225	1.0	5225.0
		सरसों	1500	4.0	6000
		खेसारी	4871	1.5	7306.5
		अरहर	496	3.0	7306.5
		कुल			24,01,422
2.	अवशेष का चारे के रूप में इस्तेमाल	जानवरों की कुल संख्या (गाय + भैंस)			5,75,000
		चारे की आवश्यकता / 7 कि0ग्रा0/मवेशी/दिन			14,59,000
3.	अधिशेष अवशेष				9,42,422

जिले में प्रमुख फसलों के लिए सांख्यिकी एवं मूल्यांकन निदेशालय तथा बिहार सरकार द्वारा वर्ष 2008–09 के उपलब्ध आंकड़ों पर आधारित गणना।

सारणी–02: फसल अवशेष जलाने से ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन एवं आर्थिक नुकसान

वर्ष	ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन (गेंहूँ) ('000' कि.ग्रा.)			ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन (धान) ('000' कि. ग्रा.)			कुल नाईट्रोजन ('000' कि. ग्रा.)	समतुल्य यूरिया ('000' कि. ग्रा.)	मूल्य (लाख)
	N	C	S	N	C	S			
2007-08	189	15739	71	99	8289	37	288	625.50	1278.59
2008-09	314	26202	118	249	20762	93	563	1222.59	
2009-10	599	49935	244	316	26337	118	915	1985.57	
2010-11	1147	95589	430	779	64972	292	1926	4179.88	
2011-12	1927	160586	722	1123	93567	421	3049	6616.37	
2012-13	2003	166973	750	1520	126699	569	3523	7645.19	
2013-14	1956	16276	732	1146	94563	453	3054	6627.18	
कुल	7112	531303	3067					28902.28	

विगत पाँच सालों में रोहतास जिले के धान एवं गेंहूँ के अवशेष जलाने से 3049 टन नत्रजन का नुकसान हो चुका है जो 6616 टन यूरिया खाद के बराबर है एवं इसकी कीमत 12.78 करोड़ होता है।

इसके अलावा फसल अवशेष को जलाने पर – (1) कालिख कणों एवं धुंआ के उत्सर्जन का मानव स्वास्थ्य पर हानिकारण प्रभाव। (2) ग्रीन हाऊस गैस का उत्सर्जन से वैश्विक उष्मता में वृद्धि। (3) मिट्टी में पोषक तत्त्वों जैसे– नत्रजन, पोटाश, कैल्सियम एवं सल्फर की कमी। (4) महत्त्वपूर्ण कार्बनिक पदार्थो तथा ऊर्जाजनित अवशेषों की बर्बादी अनुमानित है।

समस्या की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतास ने जिले में फसल अवशेषों के प्रबंधन के लिए निम्नांकित कार्यक्रम की शुरूआत कर दी है:

1. रोटावेटर मशीन के द्वारा मिट्टी में गेंहूँ के डंठल का निगमन।
2. धान के पुआल अवशेषों के संग्रह के लिये स्ट्रॉबेलर का प्रयोग।
3. गेहूँ के भूसा संग्रह हेतु स्ट्रॉ–रीपर में संशोधन।
4. फसल विविधीकरण द्वारा फसल अवशेष उत्पादन में कमी।
5. मशरूम एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन में फसल अवशेषों का उपयोग।

फसल अवशेष प्रबंधन हेतु अपनाई गई तकनीकों का विस्तृत विवरण:

(1) रोटावेटर मशीन के द्वारा मिट्टी में गेंहूँ के डंठल का निगमन:– रोटावेटर के प्रयोग से गेंहूँ के डंठल

का मिट्टी समावेश जिले के किसानों के लिए एक वरदान साबित हुआ है। किसानों के प्रक्षेत्र पर निरंतर प्रशिक्षण, प्रत्यक्षण और कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों की निगरानी में 10 किलो नत्रजन प्रति हे0 की अतिरिक्त खुराक के माध्यम से मिट्टी में फसल अवशेष के समावेश से पहले प्रक्षेत्र में छिटकाव किया गया। फलस्वरूप फसल अवशेष अपघटन एवं थोक घनत्व बढ़ाने के साथ उपज में काफी उत्साहवर्द्धक वृद्धि देखी गई है। ऐसा देखा गया है कि फसल अवशेष अपघटन, समावेश के 23वें दिन के अंत में 86.2 प्रतिशत की सीमा तक बहुत तेजी से हुई और इस जिले के किसान इस तकनीक को फसल अवशेष के प्रबंधन के उपाय को अपनाने में काफी उत्साहित दिख रहे हैं। अब जिले में फसल अवशेष प्रबंधन की सीमा रोटावेटर के माध्यम से निम्नानुसार है:

i)	जिले में कार्यरत रोटावेटर की संख्या	–	450
ii)	क्षेत्र क्षमता/रोटावेटर (हे0/घंटा)	–	0.20
iii)	कार्य अवधि की संख्या घंटा/दिवस	–	12
iv)	कार्य अवधि की संख्या दिवस/मौसम	–	30
v)	उत्पादित अवशेष/हे0 (टन)	–	04
vi)	उपयोग में आने वाले कुल अवशेष/मौसम (टन)	–	1,29,600

(2) धान के पुआल अवशेषों के संग्रह के लिये स्ट्रॉ–बेलर का प्रयोगः– जिले में कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतास के माध्यम से शुरू की गई कम्बाईण्ड हार्वेस्टर से धान की कटाई उपरान्त धान के अवशेषों के संग्रह स्ट्रॉ–बेलर द्वारा बंडल के रूप में किया जा रहा है। यह प्रमाणित हो चुका है कि यह एक बहुत की किफायती और सुविधाजनक प्रक्रिया है और धान की कटाई तथा गेहूँ की बुआई के बीच की अवधि को कम किया है ताकि किसान खुले मैदान में अवशेषों को जलाने के लिए मजबूर न होना पड़े। स्ट्रॉबेलर द्वारा धान की पुआल अपशिष्ट की मात्रा के प्रबंधन निम्नानुसार है:

i)	जिले में कार्यरत स्ट्रॉबेलर की संख्या	–	01
ii)	क्षेत्र क्षमता/रोटावेटर (हे0/घंटा)	–	0.60
iii)	कार्य अवधि की संख्या घंटा/दिवस	–	07
iv)	कार्य अवधि की संख्या दिवस/मौसम	–	20
v)	उत्पादित अवशेष/हे0 (टन)	–	09
vi)	बंडल के रूप में संग्रहित कुल अवशेष (टन)–		756

(3) गेंहूँ के भूसा संग्रह हेतु स्ट्रॉ–रीपर में संशोधन एवं प्रचारः– किसानों के लिए स्ट्रॉ–रीपर की शुरूआत गेंहूँ के दौनी से प्राप्त अवशेषों को इकट्ठा करने हेतु काफी उपयोगी हो गया है। साथ ही साथ, कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतास द्वारा चलनी के आकार में कुछ परिवर्तन करके इसे ज्यादा स्वीकार्य, किफायती और सहज बना दिया गया है ताकि किसानों को सुविधा हो सके।

i)	जिले में कार्यरत स्ट्रॉरीपर की संख्या	–	95
ii)	क्षेत्र क्षमता/स्ट्रॉरीपर (हे0/घंटा)	–	0.50
iii)	कार्य अवधि की संख्या घंटा/दिवस	–	18
iv)	कार्य अवधि की संख्या दिवस/मौसम	–	30
v)	उत्पादित अवशेष/हे0 (टन)	–	04
vi)	कुल संग्रहित अवशेष (टन)	–	1,02,600

(4) फसल विविधीकरण द्वारा फसल अवशेष उत्पादन में कमी:– जिले में जलवायु परिवर्तन और कम अनियमित वर्षा के फलस्वरूप किसानों को फसल के प्रति शिक्षित और प्रेरित किया गया है। राज्य सरकार तथा कृषि विज्ञान केन्द्र के संयुक्त प्रयास द्वारा फसल विविधीकरण अपनाने की जरूरत पर बल दिया गया और पारम्परिक लम्बी अवधि के धान के प्रभेद के स्थान पर कम अवधि वाले प्रभेद के चयन की ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया। फसल विविधीकरण के क्षेत्र और उससे उत्पन्न फसल अवशेष एवं प्रबंधन निम्नानुसार है:

क्र.सं.	विवरण	क्षेत्र, हे0	दर/हे0 (टन)	अवशेष समतुल्य (टन)
1.	खरीफ सब्जी, अरहर	4,588	-	41,292
2.	कम अवधि के धान प्रभेद का प्रयोग	35,200	09	3,16,800
	कुल	39,788	-	3,58,092

(5) मशरूम एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन में फसल अवशेषों का उपयोग:– वर्तमान में मशरूम एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादक की संख्या जिले में कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा लगातार प्रशिक्षण एवं प्रत्यक्षण के परिणामस्वरूप उद्यमी के रूप में उभर कर सामने आये हैं। धान एवं गेंहूँ के अवशेषों की भारी मात्रा में उत्पादन प्रक्रिया वैज्ञानिक तरीके से फसल अवशेष का प्रबंधन सुगमतापूर्वक की जा रही है।

(a) मशरूम उत्पादन

क्र. सं.	इकाईयों की संख्या	क्षमता (बैग)	कुल (कि.ग्र.)
1.	05	1500	7500
2.	12	100	1200
3.	1000	10	10,000
	कुल	.	18,700 (18.7 टन)

(b) वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन

क्र. सं.	इकाईयों की संख्या	क्षमता (टन/वर्ष)	कुल (टन)
1.	1	3000	3000
2.	5	1000	5000
3.	40	100	4000
4.	4000	10	40000
कुल			52000
कच्चे एवं अंतिम उत्पाद का अनुपात			4:1
अवशेष–गोबर अनुपात			3:2
कुल अवशेषों का उपयोग			1,24,800

उपरोक्त विश्लेषण के बाद कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा रोहतास जिला में अपनायी गई विभिन्न उपायों से फसल अवशेष प्रबंधन का एक झलक निम्न सारणी द्वारा दर्शायी जा रही है।

कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा जिले में फसल अवशेष प्रबंधन : एक झलक

1.	रोटावेटर	1,29,600.00
2.	स्ट्रॉ–बेलर	756.00
3.	स्ट्रॉ–रीपर	1,02,600.00
4.	फसल विविधीकरण	3,58,092.00
5.	मशरूम एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	18.70 1,24,800.00
	कुल	7,19,626.70
	जो कि जिले में अधिशेष अवशेष अर्थात् 9.42 लाख टन का 76.49% है।	

कृषि विज्ञान केन्द्र, रोहतास द्वारा शुरू की गई मिशन मोड अभियान में फसल अवशेष प्रबंधन में प्रत्येक वर्ष 10 प्रतिशत आच्छादन करने की योजना है और इस तरह आने वाले तीन वर्षों में 100 प्रतिशत प्रबंधन का लक्ष्य रखा गया है।

कृषि विज्ञान केन्द्र का यह दृष्टिकोण जिला को फसल अवशेष जलाने से मुक्त जिला बनाने हेतु और वर्ष 2019 तक भारत के प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की गई स्वच्छ भारत अभियान के तहत एक सुदृढ़ एवं सशक्त कदम साबित होगा।

सब्जी पौध उत्पादनः एक लाभकारी व्यवसाय

अभिषेक प्रताप सिंह एवं हेमंत कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, पूर्णिया (बिहार)

आज के समय में सब्जियों की खेती खाद्यान्न फसलों की तुलना में अधिक लाभकारी होती जा रही है। सब्जियों की खेती करके किसान अपनी आय में वृद्धि कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार सकते हैं। सब्जियों की खेती करने के लिए सर्वप्रथम बीज नर्सरी में डालकर पौध तैयार करते हैं। नर्सरी द्वारा उगायी जाने वाली सब्जियों में टमाटर, बैगन, शिमला मिर्च, प्याज एवं गोभीवर्गीय सब्जियाँ प्रमुख हैं। पौध तैयार कर रोपाई करना अधिक लाभप्रद होता है, जहाँ एक ओर बीजों का जमाव अच्छा होता है वहीं पौध की देखभाल में आसानी रहती है एवं कीमती बीजों का सदुपयोग हो जाता हैं। सब्जी पौध तैयार करने के लिए पौधशाला के स्थान चुनाव से लेकर पौध तैयार होने तक प्रत्येक अवसर पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है।

पौधशाला में पौध उगाने से लाभः

- कोमल तथा नाजुक पौधों की नर्सरी में आसानी से देखभाल की जा सकती है।
- सब्जियों के बीज बहुत छोटे होते हैं। इसकी बुवाई बड़े क्षेत्रफल में करने से रखरखाव सम्भव नहीं हो पाता है।
- बीज नर्सरी में बोने के कारण मुख्य खेत की तैयारी में समय मिल जाता है।
- नर्सरी को पॉलीहाउस/पॉलीटनल में उगाकर अगेती फसल ली जा सकती है तथा प्रतिकूल वातावरण से बचाया जा सकता है।
- नर्सरी में तैयार पौध की रोपाई मुख्य खेत में करने पर पौधे एक समान गति से वृद्धि करते हैं और लगभग समान रूप से कटाई योग्य तैयार हो जाते हैं।
- खेत में सीधी बुवाई की तुलना में पौध तैयार करने पर अपेक्षाकृत कम चीजों की आवश्यकता होती है, जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है।
- भूमि, बीज एवं समय का समुचित उपयोग किया जा सकता है।

पौधशाला के लिए स्थान का चुनावः

स्थान के चुनाव के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिएः

- भूमि का चुनाव अपेक्षाकृत ऊँचे स्थान पर करना चाहिए, जिससे पानी आसानी से निकल जायें।
- पौधशाला के लिए मिट्टी बलुई दोमट तथा पी.एच. मान 6.5–7.0 होना चाहिए।
- पौधशाला के लिए सिंचाई का साधन नजदीक होना चाहिए।

- ✶ पौधशाला के पास छायादार वृक्ष नहीं होने चाहिए जिससे पौधों के वृद्धि एवं विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है।
- ✶ घर के पास ही होनी चाहिए। जिससे देख–रेख ठीक से हो सके।

पौधशाला की तैयारीः

नर्सरी में पौध की अच्छी बढ़वार और बीज के जमाव के लिए मिट्टी महीन, नर्म, भुरभुरी और अच्छी होनी चाहिए। नर्सरी के लिए प्रायः 90–100 से.मी. चौड़ी, 10–15 से.मी. ऊँची आवश्यकतानुसार लम्बाई वाली क्यारियाँ बनाते हैं। इसमे से कंकड़, घास, पुराने पौधों के अवशेषों इत्यादि को निकाल देने चाहिए। भूमि की तैयारी के समय 3–4 कि.ग्रा. की दर से गोबर की सड़ी खाद या 500 ग्राम केंचुऐ की खाद तथा 100 ग्राम एन.पी.के. का मिश्रण प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से क्यारियों में मिला देना चाहिए। समान व अच्छे अंकुरण के लिए सामान्यतः दो भाग मिट्टी के साथ एक भाग महीन बालू तथा एक भाग गोबर की सड़ी खाद मिलाकर भूमि तैयार करनी चाहिए। प्रत्येक क्यारियों के बीच में 30 से.मी. चौड़ी तथा 15–20 से.मी. गहरी नालियाँ भी बनाते हैं, जिससे सिंचाई एवं जल निकास किया जा सके।

पौधशाला भूमि का उपचारः

भूमि का उपचार हानिकारक कीड़ों व रोगों से पौधों को मुक्त रखने में आवश्यक होता है। इसके लिए निम्न तरीकों में से किसी को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपना सकते हैं –

- ✶ बनी हुई क्यारियों को ग्रीष्म ऋतु में 45 दिन तक साधारण पारदर्शी पॉलीथीन शीट से ढककर रखा जाये, जिससे भूमि जनित रोगो से काफी बचाव होता है, यह विधि निचले पर्वतीय (1400–1500 मी0) व घाटी वाले क्षेत्रों के लिए अत्यधिक लाभदायक है परन्तु मध्य हिमालयी क्षेत्रों (1500 मीटर से ऊपर) जहाँ मौसम अपेक्षाकृत ठण्डा होता है, गर्मियों में तापमान 30–32 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक नहीं हो पाता, वहाँ यह विधि इतनी ठीक नहीं है।
- ✶ रासायनिक विधि से भूमि का उपचार करने के लिए कैप्टान नामक फंफूदनाशक सबसे अच्छा होता है, इसका 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोल बनाकर भूमिशोधन किया जाता है। प्रति वर्गमीटर क्षेत्रफल मे 5–6 लीटर पानी में 12.5 ग्राम दवा घोलकर भूमि को अच्छी तरह तर कर देते हैं और दूसरे–तीसरे दिन बाद बीज की बुआई कर देते हैं।

★ फार्मलीन द्वारा भी भूमि का शोधन किया जाता है। इसके लिए बीज बुवाई के 15–20 दिन पूर्व 1.5–2.0 प्रतिशत फार्मलीन के घोल की 5 लीटर मात्रा/वर्ग मीटर की दर से इस प्रकार डाले की मिट्टी पूरी तरह 15–20 से.मी. गहराई में तर हो जाये, इसके बाद क्यारी को पालीथीन से ढक देते हैं, जिससे गैस बाहर न निकले। उपचार के एक दिन बाद पॉलीथीन को हटा दें तथा गैस को क्यारी से निकलने के लिए 15–20 दिन खुला छोड़ देने के पश्चात बीज की बुवाई करें। इस विधि द्वारा उपचारित मिट्टी में सभी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं।

बीज शोधन:

पौधशाला में होने वाली बीमारियों से बचाने के लिए बीज को उपचारित करना अति आवश्यकता होती है, इसके लिए अधिकतर सब्जियों के बीजों को 50 डिग्री सेंटीग्रेड गर्म पानी में 30 मिनट तक के लिए डुबातें हैं या फफूँदनाशक दवा जैसे कैप्टान या थाइरम की 2.5 ग्राम या बाविस्टिन की 1.0 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से प्रयोग करते हैं।

प्रमुख सब्जियों का बीज दर एवं आवश्यक पौधशाला क्षेत्रफल

क्र.स.	सब्जी का नाम	बीज की मात्रा (ग्राम)		क्षेत्रफल की आवश्यकता (वर्गमीटर)
		सामान्य किस्में	संकर किस्में	
1	टमाटर	400–500	150–200	50–60
2	बैंगन	500–600	200–300	50–60
3	मिर्च	800–1000	200–300	50–60
4	शिमला मिर्च	1000–1250	400–500	60–80
5	फूलगोभी (अगेती)	600	300 400	60–80
6	फूलगोभी (मध्य एवं पछेती)	500–600	–	60–80
7	गाँठ गोभी	800–1000	–	80–100
8	पत्तागोभी	400–500	300	60–80

बीजों की बुवाई:

बीज की बुवाई समान दूरी पर कतारों में करना सर्वोत्तम होता है, कतारों में पौधे एक समान दूरी पर रहने के कारण स्वस्थ एवं मजबूत रहते हैं। समतल तैयार क्यारियों में 5–10 से.मी. की दूरी पर 0.5–1.0 से.मी. गहरी कतार बनाकर बीज की बुवाई इस प्रकार से करें कि 2–4 बीज प्रति से.मी. की दूरी में गिरे। बीज बुवाई के बाद मिट्टी, गोबर/कम्पोस्ट सड़ा हुआ तथा बालू की 1 : 1 : 1 का मिश्रण बनाकर तथा कैप्टान 5–6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से शोधित करके बीजों को ढक देते हैं।

पलवार बिछाना:

बीज बुवाई के तुरन्त बाद पुवाल या सूखी घास, जूट के बोरे से ढक देना चाहिए जैसे ही 50–60 प्रतिशत बीजों से सफेद धागेनुमा अंखुआ निकलता दिखे पलवार को सावधानीपूर्वक सांयकाल में हटा देते हैं। विभिन्न सब्जियों के बीजों में अंकुरण होने का समय अलग–अलग है, जैसे:

सब्जी	बुवाई पश्चात अंकुरण निकलने की अवधि
टमाटर	6–7 दिन
बैगन	5–6 दिन
मिर्च	7–8 दिन
गोभीवर्गीय	3–4 दिन
प्याज	7–10 दिन

पौधशाला का रख–रखाव:

बीजो को जमने से पहले हजारे (फव्वारा) से नमी की कमी होने पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। बीज जमने के बाद पलवार हो हटा देते हैं। यदि तेज धूप हो तो नर्सरी की क्यारियों की आर्च बनाकर पॉलीथीन से छाया कर देनी चाहिए।

कीटों एवं रोगों की रोकथाम:

पौधगलन बीमारी पीथियम, राइजोक्टोनिया या फ्यूजेरियम से फैलती है, इससे बचाव के लिए कैप्टान दवा को 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करते हैं। नर्सरी में पत्ती खाने वाले कीड़े लगते हैं, इसके लिए क्लोरोपाइरीफॉस/क्यूनॉलफास 2 मि.ली./लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करते हैं। यदि पत्ती के रस चूसने वाले कीटों का प्रकोप हो तो मेटासिस्टॉक्स 1 मि.ली./लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

पौध प्रतिरोपण:

पौध जब 4–6 सप्ताह पुरानी या 10–15 से.मी. लम्बी तथा 3–4 पत्तियों वाले हो जाये तब इसकी रोपाई की जा सकती है। पौध रोपण से पूर्व ट्राइकोड्रमा (10 ग्राम/लीटर पानी) या बाविस्टिन (1 ग्राम/लीटर पानी) के घोल में 30 मिनट तक पौधे की जड़ों को डुबाकर उपचारित करना चाहिए। पौधरोपण हमेशा सांयकाल में करना चाहिए, जिससे पौधे रातभर में भलीभाँति स्थापित हो जाते हैं। बादल या छाया रहने पर रोपाई किसी भी समय की जा सकती है। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। रोपाई के 7–10 दिनों के बाद यदि कोई पौधा सूख जाये तो उस स्थान पर नई पौध रोपित कर दें।

सावधानियाँ:

- ★ नर्सरी में बीज अंकुरित होने के पश्चात तुरन्त पलवार हटा देना चाहिए एवं समय–समय पर सिंचाई करके नमी अवश्य बनाये रखना चाहिए।
- ★ नर्सरी में हल्की गुड़ाई 15–20 दिन में करके खरपतवार निकाल दें।
- ★ पौध तैयार होने पर तुरन्त प्रतिरोपित करें अन्यथा देर से रोपाई करने पर उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

दलहनी फसलों में अमरलताः एक समसामयिक अध्ययन

विनीता रानी एवं बी॰ डी॰ सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, पटना (बिहार)

परिचयः–

अमरलता (*कस्कुटा रेफलेक्सा*) कस्कुटेशी परिवार की एक परोपजीवी, पराश्रयी लता है। इसका उत्पत्ति स्थान पश्चिम एवं मध्य एशिया माना जाता है। यह आकाशबेल, अमरबेल आकाशबल्ली आदि अनेक नामों से पूरे देश में फैला हुआ है। अमरबेल विभिन्न वृक्षों जैसे साल, बेल, परौंध, आम आदि वृक्षों की डालियों के अलावा विभिन्न फसलों जैसे गन्ना, सनई, राई, मसूर, बरसीम एवं आलू आदि पर फैलती है। इससे एक महीन सूत्र निकलकर वृक्षों की डालियों एवं फसलों के तनों में लिपटकर रस चूस कर आश्रय दाता पौधे (होस्ट प्लांट) से पानी, पोषक तत्व एवं जैविक कार्बन को ग्रहण करता है, जिससे अमरलता तो फलती फूलती रहती है, परन्तु इसके जो आश्रय दाता पौधे हैं उसकी वृद्धि को धीरे–धीरे रोक देती है और वह अत्यंत कमजोर होकर नष्ट हो जाती है।

अमरलता की पहचानः–

अमरलता का बीज हल्के भूरे रंग का होता है। यह कोमल पीले हरे रंग की एवं पत्र रहित होती है। पुष्प मंझरी मृदु, रोमल आधा से डेढ इंच लम्बा शंखपत्र के अक्ष से निकलता है। इसके पुष्प श्वेत मूँग या उड़द के आकार के होते है एवं इन फूलों से धीमी–धीमी खुशबू आती है।

अमरलता के प्रकारः– ये दो तरह का होता है 1. हेमीपैरासाईट– इस प्रजाति में क्लोरोफिल पाया जाता है एवं ये अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं। 2. होलोपैरासाईट– इस प्रजाति में क्लोरोफिल का अभाव होता है एवं ये अपना भोजन स्वयं तैयार नहीं करते हैं। इसकी क्रमशः दो प्रजातियां हैं यथा, कस्कुटा रेफलेक्सा एवं कस्कुटा जैपोनिका। ये दोनों प्रजातियां मुख्य रूप से एशिया महाद्वीप में पायी जाती हैं। अमरलता की लगभग दो सौ प्रजातियां हैं। इसमें से 20 ऐसी प्रजातियां हैं जो हमारे फसल एवं अन्य पौधों को हानि पहुँचाती हैं।

अमरलता का फैलावः– अमरलता का पौधा सम्पूर्ण एशिया महाद्वीप में फैला हुआ है। यह मुख्य रूप से जड़, तना, पत्ती, फूल एवं फल में विभक्त होता है। सामान्यतः एक पौधे से लगभग 16000 बीज बनते हैं। इसके बीज की जीवन क्षमता लगभग 20–60 साल तक होती है। इसका बीज सींचाई की नाली, पशु द्वारा खाए गए संक्रमित फसल से बने गोबर की खाद एवं फसल के बीज में मिले होने से फैलता है।

अमरलता से हानिः– अमरलता फसल उगने के 20–25 दिनों बाद जब पौधा अपनी वास्तविक वृद्धि पर

पहुँचता है, उस समय ये अपने आश्रय दाता पौधे से पोषण ग्रहण कर तेजी से वृद्धि करता है। ये अपने आश्रय दाता पौधे के सापेक्ष 10 गुणा अधिक वृद्धि करता है। ऐसा देखा गया है कि संक्रमित क्षेत्र में सम्पूर्ण फसल का 80 प्रतिशत तक उपज की हानि करता है।

पटना जिले में फसलों पर अमरलता का प्रभावः– पटना जिले में अमरलता ने मसूर, चना, राई, सरसो एवं धनिया के फसलों में पालीगंज, दुल्हिन बाजार, मसौढ़ी, विक्रम, नौबतपुर, बिहटा, दानापुर, धनरूआ एवं पुनपुन प्रखण्डों में विकराल रूप धारण कर लिया है। हर वर्ष सिर्फ अमरलता के कारण उपरोक्त फसल के उत्पादन में 40–60 प्रतिशत तक की कमी पाई गई है। ये समस्या विगत 4–5 साल पहले शुरू हुआ है। कृषि विज्ञान केन्द्र, बाढ़, पटना द्वारा क्षेत्रीय परियोजना निदेशक, डॉ० अजय कुमार सिंह, जोन–2 कोलकता के निर्देश पर अमरलता की रोकथाम हेतु उपरोक्त प्रखण्डों के 130 किसानों को (40 हे० मसूर में 100 किसानों को एवं 12 हे० चना में 30 किसानों को) प्रत्यक्षण के अन्तर्गत पेंडिमेथलीन का (स्टाम्प 1.25 लीटर / एकड़ की दर से) उपरोक्त फसल के बुआई के पूर्व या बुआई के 2–3 दिनों के अन्दर छिड़काव करवाया गया। इस दवा के छिड़काव का परिणाम बहुत ही अच्छा रहा। इस दवा के प्रयोग से अमरलता का रोकथाम शत–प्रतिशत पाया गया। केन्द्र के वैज्ञानिकों द्वारा फरवरी एवं मार्च 2014 में लाभुकों के फसल का निरीक्षण किया गया। निरीक्षण में पाया गया कि जिन किसानों के द्वारा दवा का छिड़काव किया गया है, उनके खेतों में अमरलता की समस्या बिल्कुल नहीं है। वहीं दूसरी तरफ जिन किसानों के द्वारा दवा का प्रयोग नहीं किया गया उसमें अमरलता की समस्या पायी गयी। क्षेत्र भ्रमण के दौरान यह भी पाया गया कि मसूर एवं चना के अलावा अन्य रबी फसल जैसे धनिया, राई एवं सरसों में भी अमरलता की समस्या थी। अमरलता की समस्या से फसल उत्पादन में काफी कमी होती है ऐसा किसानों का भी कहना है।

अमरलता प्रबंधन एवं रोकथामः– विभिन्न आश्रय दाता पौधे की उपलब्धता एवं बीज की लम्बी जीवन क्षमता के कारण अमरलता को हमेशा के लिए नष्ट करना कठिन है। इसके प्रबंधन एवं रोकथाम के लिए विभिन्न कदम उठाए जा सकते हैं–

i) बीज बनने से पहले अमरलता के पौधे को खेत से उखाड़ देना चाहिए, जिससे दूसरे वर्ष इसके फैलने का मौका कम हो जाता है।
ii) उचित फसल चक्र अपनाना चाहिए।
iii) संक्रमित खेत में अमरलता के प्रति अवरोधी फसलें जैसे धान्य फसलें, मक्का, सोयाबीन एवं लोबिया लगायें।
iv) शाकनाशी पेंडिमेथलीन को 1.25 लीटर/एकड़ की दर से बीज बुआई के उपरांत या 3 दिनों के अन्दर छिड़काव करें।

चलिए हम सब सुनते हैं, और दूसरों के द्वारा बताये गए सिद्धांतों को सुनने के लिए तैयार रहते हैं।

– प्रियदर्शिनी अशोक

ओल उत्पादन से मुंगेर जिले के किसानों में समृद्धि

जी. आर. शर्मा

कृषि विज्ञान केन्द्र, मुंगेर (बिहार)

ओल यानि जिमीकन्द 'एरेसी' कुल का एक सर्वपरिचित पौधा है जिसे भारतवर्ष में सूरन, बालपफकन्द, जिमी कन्द अनेक नामों से जाना जाता है। इसकी खेती भारत में प्राचीन काल से होती आ रही है तथा अपने गुणों के कारण यह सब्जियों में एक अलग स्थान रखता है। बिहार में इसकी खेती गृह वाटिका से लेकर बड़े पैमाने पर हो रही है तथा यहाँ के किसान इसकी खेती आज नगदी फसल के रूप में कर रहे हैं। ओल में पोषक तत्वों के साथ ही अनेक औषधीय गुण पाये जाते हें जिनके कारण इसे आयुर्वेदिक औषधियों में उपयोग किया जाता है। इसे बवासीर, खुनी बवासीर, पेचिस, ट्यूमर, दमा, फेफड़े की सूजन में उपयोगी बताया गया है। इसकी खेती हल्के छायादार स्थानों में भी भली–भाँती की जा सकती है जो किसानों के लिए काफी लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

गर्मा मौसम में जिस समय अधिकतर खेत खाली मिलती है उस समय ओल की खेती करने से आर्थिक लाभ के साथ–साथ समय के उपयोग के दृष्टिकोण से भी काफी लाभप्रद है। ओल का उपयोग चोखा, चटनी, अचार, सब्जी इत्यादि के रूप में होता है। कृषि वैज्ञानिकों ने शोध के उपरान्त ओल की कुछ नयी किस्में विकसित की हैं जिनमें कबकवाहट कम होती है। गजेन्द्र एवं त्रिवेन्द्रमी ओल के उन्नत प्रभेद हैं जिनकी व्यवसायिक रूप से खेती की जा रही है।

कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने जिले के किसानों को ओल की खेती का प्रशिक्षण, बीज उपलब्धता, मार्केट आदि की जानकारी देकर शुरूआत कराई गई। शुरू में यहाँ के कुछ किसान ओल की देशी प्रजातियों की खेती करते रहे थे। जिसकी उपज बहुत कम एवं समय भी ज्यादा लगता था।

इन्हीं सब कारणों से ओल की उन्नत प्रजाति गजेन्द्र की खेती दिवाकर सिंह, गाँव–ददरीजाला संग्रामपुर में कराई गई। अच्छी फसल अच्छी उपज के द्व ारा किसान लाभान्वित हुए साथ ही आस–पास के किसान भी इसकी खेती करने लगे। दिवाकर सिंह जी

ओल की बड़े पैमाने पर खेती किए और संग्रामपुर प्रखंड के किसान श्री की उपाधि बिहार सरकार द्वारा प्राप्त किए। कृषि विज्ञान केन्द्र, मुंगेर द्वारा इनके ओल को आदिवासी कृषकों को लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

सदर मुंगेर प्रखंड के किसान श्री रामशरण सिंह एवं मो0 एन. नुरूल होदा भी इसकी खेती कर लाभ कमा चुके हैं। जमालपुर प्रखंड के चंदनपुरा गाँव के दस किसानों के बीच वर्ष 2012–13 में ओ.एफ. टी. की गई। इसमें अलग–अलग तीन दूरियों पर ओल लगाए गए। परन्तु 75 से.मी. × 75 से.मी. की दूरी पर सबसे अच्छी उपज प्राप्त हुई। इस दूरी पर ओल की उपज 5 किलोग्राम प्रति पौध प्राप्त हुई। प्रति हे0 उपज 888.9 क्विंटल प्राप्त हुई। इसकी खेती करने में 120000 रु0/हे0 कुल लागत आया। दस रूपये प्रति किलोग्राम बेचने पर कुल उपज से 888900 रूपये की ओल प्रति हे0 आय प्राप्त हुई। लागत मूल्य घटाने पर शुद्ध मुनाफा प्रति हे0 768900 रु0 प्राप्त हुआ। और इसकी बी0 सी0 रेसियो 7.40 आया। इस आधर पर ओल की खेती लाभकारी पाई गई।

पुनः इसकी व्यवसायिक खेती जमालपुर प्रखंड के सफियाबाद निवासी श्री श्याम जी के द्वारा की गई। श्याम एक नवयुवक पढ़ा लिखा किसान है। कृषि विज्ञान केन्द्र, मुंगेर के प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं किसान चौपाल आदि कार्यक्रमों में श्याम जी हमेशा भाग लेते रहते हैं। श्याम जी एक एकड़ जमीन गढ़ी रामपुर में लीज पर लिए। वो इस जमीन पर व्यवसायिक खेती कर ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना चाहते थे। कृषि विज्ञान केन्द्र मुंगेर के उद्यान वैज्ञानिक से संपर्क किए। उनकी जमीन पर वैज्ञानिकों की टीम निरीक्षण कर उन्हें ओल की खेती की सलाह दी एवं ओल की खेती की तकनीकी जानकारी दी। तद्नुसार श्री श्यामजी ने तकनीकी अपनाकर उचित दूरी 75 ग 75 से.मी. पर आधा किलोग्राम बीज को उपचारित कर लगाए। हरेक गढ्ढे में 2.5 किलोग्राम कम्पोस्ट एवं अनुशंसित मात्रा में रासायनिक खाद एवं उचित सिंचाई की उपयोग किए। चूँकि श्याम जी की जमीन ऊँची है और पानी जमने की समस्या भी नहीं थी। इसलिए फसल पूर्णतया अच्छी उपज को प्राप्त की।

कृषि विज्ञान केन्द्र, मुंगेर के वैज्ञानिकों की टीम श्याम जी के खेत पर प्रक्षेत्र दिवस का आयोजन किए। आस–पास के किसान भी वहाँ आए। तीन–चार पौधे के ओल उखाड़ा गया। सभी लोग खुश थे

ओल देखकर। औसतन 5 किलोग्राम का ओल प्राप्त हुआ। एक एकड़ में कुल उत्पादन इन्हें 320 क्वींटल ओल प्राप्त हुए। शुरू में इन्होंने आधे ओल ;160 क्विंटलद्ध 1000 रूपये प्रति क्विंटल की दर से बेचकर 160000 रूपये प्राप्त किए। पुनः आधे ओल ;160 क्विंटलद्ध 1500 रूपये प्रति क्विंटल की दर से बेचकर 240000 रूप्ये प्राप्त किए। इस तरह श्याम जी प्रति एकड़ कुल 400000 रूपये का ओल उत्पादन किए। इसमें इन्हें लागत खर्च के रूप में 75000 रूपये प्रति एकड़ खर्च आया। इस तरह श्री श्याम जी 325000 रूपये का शुद्ध मुनाफा कमाए।

इस तरह मुंगेर जिले के किसानों के लिए ओल एक लाभकारी पफसल के रूप में प्रचलित हो रही है। ओल गर्मा मौसम में लगाई जाती है। ऊँची जमीन एवं सिंचाई के साधन की जरूरत होती है। इसकी खेती बगीचों में की जा रही है जिसे मवेशियों एवं बकरियों से कम ही क्षति होती है। किसान इसकी तकनीकी जानकारी लेकर खेती कर समुचित लाभ कमा रहे है।

मुंगेर जिले के कुछ ओल उत्पादक किसानों के नाम एवं पता

क्र0	नाम	गाँव	प्रखण्ड	मोबाईल नं0
1.	दिवाकर सिंह	ददरीजाला	संग्रामपुर	9006529988
2.	श्याम	सपिफयाबाद	जमालपुर	8051678979
3.	वेद प्रकाश सिंह	चंदनपुरा	जमालपुर	9234491944
4.	हेमन्त प्रसाद सिंह	चदंनपुरा	जमालपुर	9973579218
5.	भद्रसेन सिंह	चंदनपुरा	जमालपुर	9939091689
6.	वरूण कुमार सिंह	दरियापुर	ध्रहरा	8863941760
7.	राजेन्द्र सिंह	प्रसण्डो	खड़गपुर	9431827365
8.	धनंजय सिंह	पहाड़पुर	खड़गपुर	7631012966
9.	एक नुरूल होदा	वाकरपुर	सदर मुंगेर	9709818644
10.	रामशरण सिंह	हसनपुर	सदर मुंगेर	8877912832
11.	सुधकर सिंह	ददरीजाला	संग्रामपुर	9661323495
12.	बमशंकर सिंह	बदरखा	असरगंज	9661104634

ग्रामीण क्षेत्रों में भी हैं रोजगार के अवसर

पंकज कुमार, रमा कांत सिंह एवं सुरेन्द्र बहादुर सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, कटिहार (बिहार)

देश की शहरी आबादी जो कि सन् 1951 में मात्र 17 प्रतिशत थी वह सन् 2025 के अंत तक 42.5 प्रतिशत तक पहुँचने का अनुमान है इसका एक प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर को छोड़कर शहरी क्षेत्रों में नौकरी की तलाश में युवा पीढ़ी का शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करना है इससे आज यह स्थिति हो गयी है कि पिछले पचास वर्षों में ग्रामीण जनसंख्या 82 प्रतिशत से घटकर 69 प्रतिशत हो गई है इस असंतुलन के कारण एक ओर जहॉ शहरी क्षेत्रों में सुविधाओं के उपर जनसंख्या के बोझ के कारण संतुलन बनाने में काफी कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है वहीं दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों को छोटी से छोटी जरूरतों के लिए शहर की ओर जाना पड़ता है। इस लेख में ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्षेत्र एवं कृषि क्षेत्र के अलावा अपनाये जा सकने वाले कुछ प्रमुख रोजगारों को वर्णित किया जा रहा है। जिसको अपनाकर गॉव में रहने वाले लोग रोजगार के अवसर स्वयं के लिए भी पैदा कर सकते हैं साथ ही दूसरों के लिए भी पथ प्रदर्शक बन सकते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकीः– पिछले कुछ वर्षों में संचार सेवा में काफी विस्तार हुआ है। गॉव–गॉव में मोबाईल की पहुँच हो गई है। नये मोबाईल की बिक्री, मोबाईल रिचार्ज, मोबाईल एसेसरीज का कार्य थोड़ी सी पूंजी एवं कम स्थान में शुरू किया जा सकता है।

वीडियो शूटिंग एवं फोटोग्राफीः– विद्यालय में आवेदन या नौकरी हेतु आवेदन–पत्र पर फोटो लगाने की जरूरत होती है, विवाह समारोह में भी फोटोग्राफी एवं वीडियोग्राफी की जाती है। यदि गांव में फोटोग्राफी एवं वीडियो शूटिंग का व्यवसाय किया जाए तो बहुत ही कम खर्चे पर रोजगार शुरू किया जा सकता है।

स्क्रीन प्रिंटिंगः– विभिन्न अवसरों पर आमंत्रण–पत्र, निमंत्रण पत्र, पोस्टर इत्यादि की जरूरत होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रेस नहीं होता है, स्क्रीन प्रिंटिंग द्वारा रंगीन छपाई की जा सकती है।

बिजली फिटिंगः– गांवों में बिजली पहुँचाने से घरों, दुकानों आदि में बिजली फिटिंग का काम करना होता है। एक बार फिटिंग होने के बाद उसमें खराबियॉ आ जाने से मरम्मत की जरूरत होती है उचित प्रशिक्षण प्राप्त कर एवं कम खर्चे से औजार खरीदकर इस कार्य को प्रारंभ किया जा सकता है।

फर्नीचर निर्माण व मरम्मतः– आजकल लोगों के पास लकड़ी, लोहे आदि की अनेक वस्तुऍ रहती है उन्हें समय–समय पर बदला भी जाता है इस क्षेत्र में रोजगार की बहुत संभावना है परंपरागत औजारों के साथ ही बिजली से चलने वाले कई नए औजार आ गए हैं उनके उपयोग से काम अच्छा एवं जल्दी होता है।

शिक्षण कार्यः– शिक्षा के प्रति जागृति के साथ ही लोग अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा के लिए प्रयास करते

हैं। अतः अच्छा विद्यालय, ट्यूशन क्लासेज एवं अंग्रेजी माध्यम के स्कूल चलाकर अच्छा कार्य मिल सकता है।

वाहन मरम्मतः– आजकल गॉवों व कस्वों में भी लोगों के पास साइकिल, मोटर साइकिल, जीप, ट्रैक्टर इत्यादि वाहन रहते हैं। समय–समय पर उनकी मरम्मत की आवश्यकता पड़ती है। उस क्षेत्र में कुशल प्रशिक्षण प्राप्त कर वाहन मरम्मत का कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में किया जा सकता है।

चिकित्सा कार्यः– अनेक गॉवों में चिकित्सकिय सुविधाएँ अभी तक नहीं पहुँची है। वहॉ पर लोगों की मदद के लिए चिकित्सा सुविधा बढ़ाने की जरूरत है ऐसे क्षेत्रों में दाई, नर्स आदि का प्रशिक्षण प्राप्त कर रोजगार प्राप्त किया जा सकता है।

सेनेट्री का कार्यः– गॉवों में भी जगह–जगह पानी की आपूर्तिपानी की टंकियॉ व नल लग जाने से लोग घरों में नल की फिटिंग करवाते हैं, इस तरह की कई प्रकार की फिटिंग का कार्य होता है उनमें मरम्मत का भी कार्य रहता है जानकार सेनेट्री–फिटर के साथ कुछ दिनों तक कार्य को सीखकर इसे रोजगार के रूप में अपनाया जा सकता है।

वेल्डिंग का कार्यः– खिड़कियॉ व दरवाजे में ग्रील आदि लगाई जाती है यह लोहे एवं तार का बना होता है इसमें वेल्डिंग का काफी कार्य होता है। वेल्डिंग में गैस सिलेंडर एवं कुछ साधारण औजारों की आवश्यकता होती है। इससे अनेक प्रकार की मशीनों में टूट–फूट को भी मरम्मत की जा सकती है। गॉव में ही थोड़ी सी जगह में शेड बनाकर इस व्यवसाय को किया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉनिक एवं इलेक्ट्रीक उपकरण मरम्मतः– रेडियो, टी0वी0, घड़ी, पंखे, प्रेसर कूकर गैस चूल्हा, बिजली से चलने वाले अन्य उपकरण जैसे आयरन, मिक्सी, वाशिंग मशीन, आटा–चक्की ग्राइण्डर, मोटर आदि उपकरण घरों में काम आते हैं। उनमें समय–समय पर खराबियॉ आ जाने पर उन्हें मरम्मत की आवश्यकता पड़ती है। कुछ समय के लिए किसी दुकान पर रहकर भी इस तरह के कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सकता है।

मशरूम उत्पादनः– पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मशरूम की मुख्य भूमिका हो सकती है क्योंकि मशरूम में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन उपलब्ध होता है। अगर ग्रामीण युवक इसके उत्पादन व विपणन का तरीका कृषि विज्ञान केन्द्र से सीख लेते हैं और उसका विपणन करने लगे तो यह एक युवाओं की बेरोजगारी दूर करने में मील का स्तम्भ साबित हो सकता है।

सब्जी एवं फल प्रसंस्करणः– सब्जी एवं फलोत्पादन में भारत द्वितीय स्थान पर है लेकिन लोगों तक उपलब्धता बहुत ही कम है इसका मुख्य कारण एक निश्चित समय पर सब्जी एवं फल तो उत्पादित हो जाती है लेकिन उसका जीवनकाल कम होने के कारण ज्यादा मात्रा में खराब हो जाती है। इस खराब हो रहे उत्पाद को अगर ग्रामीण युवक–युवतियां प्रसंस्करण की तकनीक सीख कर उसको बचा लेते हैं तो इसकी उपलब्धता भी बढ़ जाएगी तथा इससे हमारे ग्रामीण युवाओं को रोजगार भी उपलब्ध हो जाएगा।

वर्मी–कंपोस्टः– असंतुलित मात्रा में रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा एवं मानव पर जो दुष्प्रभाव पड़ रहा है उससे बचाने में दुरूस्त रखने में वर्मीकंपोस्ट की मुख्य सहभागिता है तथा किसानों में इसकी जागरूकता के कारण इसकी मांग में काफी वृद्धि हुई है। फलतः ग्रामीण युवाओं/युवतियों द्वारा वर्मीकंपोस्ट की उत्पादन तकनीकि को कृषि विज्ञान केन्द्र से प्राप्त कर उसके उत्पादन के साथ ही विपणन कर अच्छा रोजगार का अवसर पैदा किया जा सकता है।

बीजोत्पादनः– कृषि क्षेत्र में अधिक उत्पादन के लिए सर्वाधिक मुख्य भूमिका बीज का है जिसका उत्पादन अगर हमारे ग्रामीण युवाओं द्वारा प्रारंभ कर दिया जाता है तो गुणवत्तायुक्त बीज हमारे किसानों को उपलब्ध भी हो जायेगा साथ ही युवाओं को रोजगार भी उपलब्ध हो जाएगा।

पशुपालन एवं मुर्गीपालन व्यवसायः– इस व्यवसाय को कम जगह एवं कम खर्चे में थोड़ी सी जगह में उचित प्रशिक्षण प्राप्त कर शुरूआत की जा सकती है।

इस प्रकार के और भी अनेक कार्य गांवों के आस–पास मौजूद होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी आजीविका के काफी स्रोत हैं परंतु सभी जगहों से परिश्रम, बौद्धिक–शारीरिक कुशलता और जोखिम उठाने की आवश्यकता है। थोड़ी सी परिश्रम, कुछ धैर्य एवं व्यावसायिक सोच का प्रयोग आजीविका के नए–नए आयाम प्रदान कर सकते हैं। नए उद्यमियों के कौशल विकास के लिए कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं। नए व्यवसाय को शुरू करने हेतु आवश्यक प्रशिक्षण के लिए नए उद्यमी अपने जिले में अवस्थित कृषि विज्ञान केन्द्र से संपर्क कर सकते हैं। बैंक भी रियायती दर पर कर्ज मुहैया कराती है। परिश्रम की रोटी खाने का भाव रखने वालों के लिए आजीविका के स्रोतों का कतई अभाव नहीं है।

तीन चीजें जादा देर तक नहीं छुप सकती, सूरज, चन्द्रमा और सत्य।

– भगवान गौतम बुद्ध

गन्ना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

राजेन्द्र प्रसाद

कृषि विज्ञान केन्द्र, गोपालगंज (बिहार)

ईख बिहार की एक महत्वपूर्ण औद्योगिक एवं नगदी फसल है। इसके विकास पर ही बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। विश्व की कुल चीनी का 13.25 प्रतिशत तथा एशिया महाद्वीप का 41.25 प्रतिशत खपत को अकेले भारत वहन करता है। गन्ने से अब केवल चीनी ही नहीं बल्कि इथेनॉल, बिजली, कार्बनिक खाद इत्यादि का उत्पादन हो रहा है। बिहार में गन्ने की औसत उपज लगभग 50 टन/हे0 है जबकि राष्ट्रीय औसत लगभग 70 टन/हें0 है। इसकी औसत उपज 75 टन/हें0 से अधिक होनी चाहिए। कम उत्पादकता के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

1. पौधों की कम संख्या
2. समुचित सिंचाई का अभाव
3. कमजोर खूँटी प्रबंधन
4. असंतुलित एवं कम उर्वरकों का प्रयोग
5. अनुशंसित प्रभेदों का चुनाव न करना।
6. पौधा–संरक्षण के उपायों पर ध्यान न देना।
7. अनुशंसित तकनीक से खेती न करना।

आधुनिक तकनीक से खेती करने पर ईख से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। साथ ही इससे आर्थिक लाभ भी अधिक होगा।

रोपण का समयः ईख की रोपनी दो मौसमों में की जाती है।

क) शरद कालीन रोपः अक्टूबर से मध्य नवम्बर तक।
ख) बसंतकालीन रोपः फरवरी से मध्य मार्च तक

अगर खेत में नमी का अभाव हो तो पहले हल्की सिंचाई कर खेत की तैयारी करें। शरदकालीन रोप की उपज बसंत कालीन रोप की तुलना में करीब 20–25 प्रतिशत अधिक होता है।

मिट्टी एवं खेत की तैयारीः ईख की खेती सभी प्रकार की मिट्टियों में की जा सकती है परन्तु दोमट मिट्टी तथा ऊँची या मध्यम जमीन जहाँ जल निकास की अच्छी व्यवस्था हो अधिक उपयुक्त है । ईख की जड़े काफी गहराई तक जाती है इसलिए खेत की गहरी जुताई आवश्यक है। खेत तैयार करने के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। बैल चालित अथवा ट्रैक्टर चालित तवादार हल मिट्टी पलटने के साथ–साथ गहरी जुताई के लिये भी उपयुक्त है। दूसरी जुताई मिट्टी को भुरभुरा करने के

लिए किया जाता है। इसके लिए डिस्क हैरो या पंचफारा अर्थात कल्टीवेटर का उपयोग करना चाहिए। साथ ही प्रत्येक जुताई कें बाद तुरंत पाटा देना नमी बनाये रखने मे सहायक एवं जमीन को समतल करने के लिए आवश्यक है खेत में जल निकासी की समुचित व्यवस्था रहनी चाहिए।

अनुशंसित प्रभेदः अनुशंसित प्रभेद की ही रोपनी करें। परिपक्ता के आधार पर ईख के प्रभेदों को दो समूह में विभाजित किया गया है अगात एवं मुख्य कालीन। **अगात प्रभेदो** में बी0ओ0–130, बी0ओ0–139, बी0ओ0–145, सी0ओ0पी0 –9301, बी0ओ0–153 एवं को0ल0–94184 प्रमुख है। इसकी कटाई 15 नवम्बर के बाद करें। **मध्य पिछात** प्रभेदो में बी0ओ0–91, बी0ओ0–110, बी0ओ0–136, बी0ओ0–137, बी0ओ0–147, बी0ओ0–141, सी0ओ0 पी0–9302, सी0ओ0पी0–9206, सी0ओ0पी0–9702 एवं सी0ओ0पी0–2061 प्रमुख है, इसकी कटाई जनवरी माह से करें। जल जमाव वाले क्षेत्रों में बी0ओ0–110 एवं बी0ओ0–147, की रोपनी करें।

उपरोक्त सभी प्रभेद गुड़ एवं खूंटी फसल के लिए उपयुक्त है तथा रोग एवं कीटों से कम प्रभावित होते है।

बीज का चुनावः रोग एवं कीट रहित खेत से आवश्यकतानुसार अनुशंसित प्रभेद के बीज का चुनाव करें। यथासंभव 9–10 महीने के फसल को बीज के रूप में इस्तेमाल करें। जहाँ तक संभव हो पौधे के उपरी दो तिहाई हिस्से को ही बीज के रूप में इस्तेमाल करें क्योकि निचले भाग की आँखे काफी कड़ी हो जाती है तथा उस भाग में सुक्रोज की मात्रा अधिक होती है जिसका प्रभाव अंकुरण पर पड़ता है।

बीज का उपचारः रोप के लिए ईख का टुकड़ा इस तरह काटे कि उपर वाली ऑख के उपर पोर का एक तिहाई हिस्सा हो और नीचे वाली आँख के नीचे दो तिहाई बीज के टूकड़े हो । इस टुकड़े को रोप के समय बाबिस्टीन का एक ग्राम तथा क्लोरप्राइरीफास का 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर उपचारित कर लें।

बीज दरः 50–60 क्विंटल/हें0 (तीन आँख वाली लगभग 45000–50000 गुल्लियाँ)

मिट्टी उपचारः शरद रोप में ईख लगाते समय सिराउर या ट्रेंच में क्लोरपाइरीफॉस 20 प्रतिशत तरल का 5 लीटर 1500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से व्यवहार करें। बसंत रोप के समय फोरेट 10 जी कीट नाशक दवा का 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से गेड़ियों पर व्यवहार कर मिट्टी से तुरत ढक दें। जून के अंत में मिट्टी चढ़ाते समय शीर्ष छिद्रक की तीसरी पीढ़ी अन्य कीड़ो एवं सुत्र कृमि से वचाव हेतु फोरेट 10 जी दवा का 15 किलो ग्राम प्रति हेक्टर या कार्वोफ्यूरॉन 3–जी दवा का 33 किलो ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से व्यवहार करें।

रोप की विधिः ईख रोप की चार विधियाँ है।

1. **सिराउर विधिः** सिराउर विधि में रीजर से सिराउर बना ली जाती है और इसमें उपचारित गुल्लियों को आँख से आँख मिलाकर बिछा दिया जाता है पंक्ति से पंक्ति की दूरी 90 से0मी0 रखी जाती है।

2. **ट्रेंच विधिः** इस विधि में कुदाल से 30 सेमी गहरी और 30 सेमी चौड़ी नाली खोदकर उसमें उपचारित

गुल्लियों को आँख से आँख मिलाकर बिछा दिया जाता है। ट्रेंच विधि में ट्रेंच बनाने के लिए ट्रैक्टर चालित ट्रेंचर का भी उपयोग कर सकते है। ट्रेंचर द्वारा 1 मिनट में लगभग 25 मीटर लम्बा ट्रेंच बना सकते हैं।

3. **जोड़ी पंक्ति विधिः** ईख रोपने के लिए जोड़ी पंक्ति विधि का विकास ईख अनुसंधान संस्थान, पूसा द्वारा किया गया है। इस विधि में रीजर से सिराउर खोदकर उसे कुदाल या ट्रैक्टर चालित यंत्र से साफ कर दिया जाता है जिसे सिराउर की चौड़ाई 20सेमी हो जाती है। सिराउर की दोनो किनारो पर तीन आँख वाली गुल्लियां सिरा से सिरा सटाकर विछाई जाती है। इस विधि में भी पंक्ति से पंक्ति की दूरी 90 से0मी0 रखी जाती है।

4. **रिंग या पिट विधिः** यह विधि भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ द्वारा विकसित की गई है। इस विधि में 90 से0मी0 गोलाकार और 45 से0मी0 गहरा पिट खोदा जाता है। दो पिट के बीच एक तरफ

60 से0मी0 तथा दूसरे तरफ 90 से0मी0 की दूरी रखी जाती है सिंचाई की नाली 90 से0मी0 दूरी वाले किनारे की तरफ रखी जाती है। इस तरह की दूरी रखने पर करीब 4000 पिट एक हेक्टेयर में बनती है। पिट या गड्डे को मिट्टी और कम्पोस्ट या प्रेसमड से 15 से0मी0 भर दिया जाता है इसके बाद दो आँख वाली उपचारित करीब 20 गुल्लियों को साइकिल के स्कोप की तरह प्रत्येक पिट या गडढे में विछाकर उसके उपर 5 से0मी0 मिट्टी डाल दिया जाता है। जैसे–जैसे फसल बढ़ती है वैसे–वैसे खाद डालते समय मिट्टी से पिट को भरते जाते है। इस विधि द्वारा रोपनी करने पर करीब डेढ़ गुणा ज्यादा उपज मिलती है। इस विधि में खूंटी फसल भी अच्छी प्राप्त होती है और गन्ना भी कम गिरता है। ड्रिप विधि से सिंचाई करने के लिए यह विधि सर्वोत्तम है जिसमें पानी की काफी बचत होती है। इस विधि में पिट खोदने में काफी मजदूर लगते हैं जिसके निदान के लिए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ एक 35 एच0पी0 पावर के ट्रैक्टर से चलाने वाले पिट खोदने वाली मशीन का आविष्कार किया है जो करीब 500 पीट (90 सेमी गोलाई व 30 सेमी गहराई) प्रतिदिन 8 धंटे में खोदता है।

इस विधि में ड्रीप फर्टीगेशन प्रणाली का भली भांति उपयोग किया जा सकता है जिससे पानी की काफी बचत होती है।

गन्ना रोपने के लिये मशीन भी उपलब्ध है जिसे सूगरकेन प्लान्टर कहते हैं। ट्रैक्टर से चलने वाले सुगरकेन सेटकट्र प्लान्टर निम्नलिखित कार्य करते है।

1. निश्चित लम्बाई में सेट काटना।
2. सेट को उपचारित करना।
3. नाली बनाकर उसमें सेट एवं फर्टीलाइजर डालना।
4. मिट्टी उपचारित करने के लिये पेस्टीसाइड गिराना ।
5. नाली में बिछाये गये सेट को ढ़कना।

इस मशीन से रोपाई करने के लिये समूचे गन्ने को मशीन में डाला जाता है। मशीन 35 से 36 से0मी0 की लम्बाई में सेट काट कर खेत में गिराता जाता है। इस मशीन से कतार से कतार की दूरी 83 से 100 से0मी0 तक समायोजित की जा सकती है। नाली की गहराई 25 से 30 से0मी0 तक रखी जा सकती है। इस मशीन द्वारा एक दिन में 2.5 से 3 एकड़ तक गन्ने की रोपाई कर सकते है।

खाद एवं उर्वरक: 20 टन कम्पोस्ट या गंधकीय प्रेसमड या 10 टन वर्मी कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर की दर से सिराउर या ट्रेंच में डालकर अच्छी तरह मिला लें। रिंग या पिट विधि में प्रति पिट 5 किलों कम्पोस्ट का व्यवहार करें। जहाँ भी जिंक की कमी हो वहाँ 50 किलो ग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर रोप के समय ही प्रयोग करना लाभदायक है।

ईख के लिए रासायनिक खाद (कि0ग्रा0 प्रति हेक्टेयर) की मात्रा

क्र0सं0	समय	नत्रजन	फस्फूरास	पोटाश
क) सिराउर विधिः				
1.	रोप के समय	70	85	60
2.	रोप के 60वाँ दिन	40	–	–
3.	रोप के 120वाँ दिन	40	–	–
	कुल मात्रा	150	85	60
ख) जुड़वा पंक्ति विधिः				
1.	रोप के समय– क) अंडी या तोरी की खल्ली 8 क्विंटल ख) रासायनिक खाद	40 45	– 85	– 60
2.	रोप के 60वाँ दिन	45	–	–
3.	रोप के 120वाँ दिन	45	–	–

	कुल मात्रा	175	85	60
ग) रिंग या पिट विधिः				
1.	रोप के समय	70 (यूरिया 23 ग्राम प्रति पिट)	85 (डी0ए0पी0 47 ग्राम प्रति पीट)	60 (म्यूरेट ऑफ पोटाश 24 ग्राम प्रति पिट)
2.	रोप के 60वाँ दिन	40 (यूरिया 42 ग्राम प्रति पीट)	–	–
3.	रोप के 120वाँ दिन	40 (यूरिया 42 ग्राम प्रति पिट)	–	–
	कुल मात्रा	150	85	60

निकाई–गुड़ाई एवं अन्तरकर्षण

गन्ने की फसल के जीवन काल में विभिन्न प्रकार के खरपतवार निकलते रहते है और फसल की वृद्वि में बाधक सिद्ध होते है। गन्ना फसल को प्रारंभिक अवस्था यानी रोपनी से 120 दिनों तक खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। साधारणतया ईख रोप के करीब 40–45 दिनों के बाद खुरपी द्वारा कमौनी आवश्यक है। यदि खरपतवार अधिक हो तो पुनः 60–65 दिनों के बाद दूसरी कमौनी अच्छी फसल के लिए उचित है। इसके बाद प्रत्येक सिंचाई के बाद अन्तराकर्षण पंचफारा की मदद से करें।

खरपतवार की रोक थाम के लिए तृणनाशक दवा का भी व्यवहार कर सकते है। ईख रोप के तीन दिनों के अंदर 3 से 4 कि0ग्रा0 एट्राजिन 700–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से समान रूप से छिड़काव करें। पुनः 55–60 दिनों के बाद 2,4–डी तृणनाशक दवा का 1.25 कि0ग्रा0 700–800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने पर सभी चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार नियंत्रित हो जाते है। इसके अतिरिक्त मई के मध्य में एक गुड़ाई करने पर खरपतवार पूरी तरह नियंत्रित हो जाते है। खरपतवार नियंत्रण के लिये पावर वीडर एक बहुत ही उपयोगी मशीन है। इस मशीन द्वारा 1 घंटा में 0.5 एकड़ में निकौनी की जा सकती है।

सिचाईः गन्ने के जीवन काल को 3 भागों में अंकुरण के उपरान्त बाँटा जा सकता है कल्ला प्रस्फुरण, गन्ना वृद्धि और शर्करा संचय। कल्ला प्रस्फुरण समय प्रायः मध्य मार्च से लेकर मध्य जून तक रहता है इस अवधि में जल की आवश्यकता होती है जिसे सिंचाई द्वारा पूरी करते हैं। उसके बाद जल की आवश्यकता की पूर्ति मौनसून की वर्षा से पूरी हो जाती है।

गन्ने की हर एक भाग (शुष्क पदार्थ) पैदा करने के लिए लगभग 250 भाग पानी की आवश्यकता होती है। फसल कटने के समय इसमें 70 प्रतिशत पानी होता है। बिहार में गन्ने के लिए लगभग 140–160 सेमी पानी की आवश्यकता होती है। लगभग 120 से0मी0 जल वर्षा द्वारा प्राप्त हो जाती है। रोप के लगभग डेढ़ महीना बाद पहली सिंचाई करें उसके बाद आवश्यकतानुसार तीन या चार सप्ताह के अंतराल पर

सिंचाई दें जबतक मानसून की वर्षा प्रारंभ नहीं हो जाती है। प्रत्येक सिंचाई के बाद अन्तराकर्षण करना आवश्यक है। इस तरह शरद रोप में 6–7 सिंचाई तथा वसंत रोप में 4–5 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

मिट्टी चढ़ानाः गन्ने में मिट्टी दो बार चढायें :

1. **पहली वारः** गन्ना रोप के 90 दिनों बाद जूनियर रीजर से हल्की मिट्टी चढ़ायें जिससे कल्ले काफी संख्या में निकलते हैं।
2. **दूसरी वारः** गन्ना रोप के 120 दिनों बाद सीनियर रीजर से मिट्टी चढ़ायें जिससे गाँठ से जड़े काफी मात्रा में निकलकर मिट्टी में जाती है और गन्ने को गिरने से बचाती है। इससे एक फायदा यह होता है कि देरी से जो कल्ले निकलते हैं जिसको बाटर शूट कहते हैं और वह मिलेबल केन में नहीं बदल पाता है वह भी नियंत्रित हो जाता है।

स्तम्भनः अच्छी फसल को वर्षा के दिनों मे तेज हवा एवं आँधी के कारण गिरने से बचाने के लिए अगस्त से मध्य सितंबर तक पत्ती–रस्सी विधि से स्तम्भन कर दें। इसके लिए ईख को आमने– सामने की पँक्तियों को एकान्तर श्रृंखला में ईख अनुसंधान संस्थान, पूसा द्वारा अनुशंसित विधि से बांध दें।

कटनीः प्रभेद की परिपक्कता के अनुसार ही कटनी करें। कटनी जमीन की सतह से की जाय। अनुशंसित तकनीक द्वारा खेती करने पर शरद रोप से करीब 95–100 टन तथा वसंत रोप से करीब 75–80 टन उपज प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

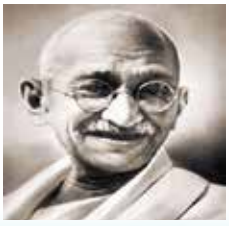

थोड़ा सा अभ्यास बहुत सारे उपदेशों से बेहतर है।

– महात्मा गांधी

गेहूँ एवं धान की शुन्य जुताई पद्धति से खेतीः खर्च कम पैदावार ज्यादा

के. के. झा एंव ए. के0 सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, पूर्वी चम्पारण (बिहार)

धान भारत की एक प्रमुख फसल है। हमारे देश में लगभग 42 मि0 हे0 क्षेत्र में धान तथा 30 मि0 हे0 में गेहूँ की खेती की जाती है, जिसमें से लगभग 60 प्रतिशत वर्षा आधारित है। पूर्वी भारत मे 162 लाख हे0 में धान की खेती वर्षा आधारीत है जिसमें 6.3 मि0 हे0 उपरी जमीन एंव 7.3 मि0 हे0 निचली जमीन सुखे से प्रभावित होती है। बिहार राज्य में धान की खेती लगभग 33 लाख हे0 तथा गेहूँ 23 लाख हे0 मे होती है। पूर्वी चम्पारण में 2.0 लाख हे0 मे धान तथा 1.07 लाख हे0 मे गेहूँ की खेती की जाती है। जिसमें मात्र एक तिहाई जमीन ही सिंचित है जबकि दो–तिहाई क्षेत्रों में धान की खेती नहर के पानी तथा वर्षा जल पर आधारित है। असिंचित क्षेत्रों में समय पर वर्षा का पानी न मिलने से किसान समय से कदवा नहीं कर पाते है जिससे धान की रोपनी मे बिलम्ब होता है। इसके साथ ही सिंचित नहरी क्षेत्र में भी नहर का पानी समय पर नहीं आने से धान की रोपनी में विलंब होता है। इससे पैदावार में कमी के साथ–साथ रबी फसल की बुआई मे देरी हो जाती है। फलस्वरूप रबी एंव खरीफ दोनो के उपज प्रभावित होता है। इस समस्या के समाधान हेतु धान–गेहूँ की सीधी बुआई एक अच्छा विकल्प है। सीधी बुआई का मतलब फसल को बिना जुताई की हुई जमीन मे लगाना हैं इसको जीरो टिल, नो टिल या सीधी बुआई का नाम दिया जाता है। लेकिन इस समय जीरो टिलेज का सीधा संबंध पूर्व फसल के अवशेष युक्त भूमि को बिना जोते यांत्रिक बुआई से है। इस तकनीकी का सबसे ज्यादा उपयोग हरियाणा 43%, पंजाब 28%, तथा उतर प्रदेश 20% में अपनाया गया है जबकि बिहार 10% तथा पश्चिम बंगाल में इसका उपयोग कम होता हैं। बिगत पॉच सालों में पूर्वी चम्पारण में कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठ द्वारा व्यापक रूप से अभियान चलाया जा रहा है जिसका परिणाम है कि यह तकनीकी किसानो के बीच में अब फैल रही है तथा लगभग 15–16 प्रतिशत किसान इस तकनीक का प्रयोग कर रहे है। आज के परिवेश में धान–गेहूँ में सधन संरक्षण तकनीकी पर आधारित जीरो टिलेज गंगा के मैदानी क्षेत्रों में वृहद पैमाने पर अपनाई जा रही है।

धान–गेहूँ की सीधी बुआई से कई महत्वपूर्ण फायदे क्षेत्र स्तर पर होते है। जैसे–

- समय पर धान–गेहूँ की सीधी बुवाई
- कम लागत में बुवाई
- कादो करने पर मृदा की भौतिक दशा खराब होने से रवी फसल पर जो दुष्प्रभाव पड़ता है उसका समाधान।
- फसलों में कम लागत लगाकर अधिक उत्पादन पाने के लिए किसानों को फसल चक्र को समझना

एंव समय पर बुवाई के साथ साथ उतम बीज और उर्वरको की संतुलित मात्रा।

- ✶ समय पर पानी एंव मजदूरों की अनुउपलब्धता की समस्या से अप्रभावित होना।
- ✶ समय से खेती होने पर फसल सघनता में वृद्धि (साल में 3–4 फसल) एवं 15–20 प्रतिशत उत्पादन लागत में कमी।
- ✶ समय पर बुवाई से धान एंव गेहूँ के उपज में बृद्धि (10–15 प्रतिशत)
- ✶ श्रम संसाधन एंव लागत की बचत। इत्यादि।

धान–गेहूँ की सीधी बुवाई की जरूरत क्यों ?

परम्परागत तरीके से धान–गेहूँ की खेती करने के लिए समय पर नर्सरी तैयार करना, खेत में पानी की उचित व्यवस्था करने कदवा करके, मजदुरों से रोपाई करने की आवश्यकता होती है। इससे धान की खेती की कुल लागत में बढ़ोत्तरी हो जाती है। समय पर वर्षा का पानी न मिलने पर कदवा एंव रोपनी मे बिलंब हो जाता है। वर्षा आधारित एंव नहर वाले क्षेत्रों मे यह एक प्रमुख समस्या है। लगातार कदवा से मृदा की भौतिक दशा में परिर्वतन, धान काटने के वाले बाद खेत की तैयारी करने में लगभग 15 दिनों का समय नष्ट हो जाता है जिससे गेहूँ लगाने में विलंब होता है नतीजन गेहूँ की उपज घट जाती है। सीधी बुवाई तकनीक अपनाकर उपरोक्त समस्याओ को कम किया जा सकता है एंव अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

धान एवं गेहूँ की सीधी बुवाई के लिए उपयुक्त मशीन

धान एवं गेहूँ की सीधी बुवाई के लिए जीरो टिल ड्रिल अथवा मल्टी–क्रॉप प्रयोग में लाया जाता है। जिन खेतों में फसलों के अवशेष हो और जमीन आच्छादित हो वहॉ पर टरवो हैपी सीडर या रोटरी डिस्क ड्रिल जैसी मशीनों से धान की बुवाई करनी चाहिए । जीरो टिल ड्रिल अथवा मल्टीक्रॉप टिल ड्रिल 35–45 हार्स पावर के ट्रैक्टर से चलती है। इस मशीन में मिटटी चिरने वाले 9 या 11 भालानुमा फार 22 से0 मी0 की दूरी पर लगे होते है और इसे ट्रैक्टर के पीछे बॉधकर चलाया जाता है। इससे लगभग प्रति घण्टा एक एकड़ में धान या गेहूँ की बुवाई हो जाती है । बुवाई के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

सीधी बुवाई के लिए उपयुक्त प्रजातियॉ

किसान सही प्रजातियों का समयानुसार और क्षेत्र विशेष मे अनुसार चयन करके अच्छा उत्पादन ले सकते है। धान एवं गेहूँ की खेती सीधी बुवाई करने हेतु प्रजातियॉ निम्न प्रकार है।

फसल	भुमि	किस्में	अवधि
धान	उपरी भूमि	प्रभात, सहभागी, सी0आर0 धान 40, रा0 भगवती	95–115
	मध्यम	रा0 भगवती, सीता, राजश्री, प्रभात, सहभागी, रा0 कस्तुरी, सुगंधा इत्यादि, रा0 कस्तुरी	115–135

	निचली	स्वर्णा मंसुरी, राजश्री, रा0 मंसुरी, बी0 पी0 टी0 5204, स्वर्णा सब–1 इत्यादि	135–155
गेहूँ	सिंचित भुमि (समय से) 1–25 नवम्बर	पी0बी0डब्लु0 343, 443,502, एच0 डी0 2733, 2824, 2967	
	बिलंब से (25 नवम्बर से 15 दिसम्बर)	पी0बी0डब्लु0– 373, एच0 डी0 2285, एच0 डी0 2643, डी0 बी0 डब्ल0 14, 17 इत्यादि	

धान की सीधी बुआई का उचित समय

लंबी अवधि के लिए (140–155) दिन	25 मई – 10 जून
मध्यम अवधि (130–140) दिन	10 जून – 20 जून
कम अवधि (90–125) दिन	20 जून – 25 जून
गर्मा धान	1– 15 मार्च

बीज की मात्रा

सीधी बुवाई विधि में जीरो टिल ड्रिल मशीन के द्वारा उपचारित गेहूँ– घान की किस्मो के लिए बीज की मात्रा निम्न प्रकार रखनी चाहिए।

धान – 25–30 किलो ग्राम प्रति हेक्टर
गेहूँ – समय पर बुवाई – 100 किलो ग्राम प्रति हे0
विलम्ब से बुवाई – 125 किलो ग्राम प्रति हे0

बुवाई की तैयारी

बुवाई से पूर्व धान के खेत को यथा सम्भव समतल कर लेना चाहिए और यदि संभव हो तो लेजर लेवलर का प्रयोग करे। बुवाई के समय खेत मे पर्याप्त नमी की मात्रा होनी चाहिए। जिस खेत मे नमी कम हो वहॉ पहले सिंचाई कर खरपतवार नाशक दवा का प्रयोग करना चाहिए। बुवाई करने से पूर्व जीरो टिल ड्रिल मशीन का अंशशोधन कर लेना चाहिए जिससे बीज एंव खाद की निर्धारित मात्रा एक कप से एंव गहराई मे पड़े। गेहूँ बोने के लिए धान की कटाई करने के पश्चात नमी की स्थिति को देखते हुए बुवाई करनी चाहिए यदि नमी की कमी हो तेा उपर बताये विधि के अनुसार पहले खरपतवार नाशी का प्रयोग करें तत्पश्चात हल्की सिंचाई कर उपयुक्त नमी आने पर बुवाई करे। मशीन द्वारा सीधी बुवाई मे कतार से कतार की दूरी 20 से0 मी0 होती है। धान गेहूँ की सीधी बुवाई करते समय बीज को 3–4 से0 मी0 गहराइ पर ही बोये।

खरपतवार प्रबंधन

सीधी बुआई के लिए धान एवं गेहूँ फसल चक्र में खरपतवार एक जटिल समस्या है। पूर्वी चम्पारण

की बात करें तो यहॉ की बलुई दोमट मिटट्री मे खरपतवार की समस्या और व्यापक है तथा सभी तरह की घास यहॉ पायी जाती है जो अन्य जगहों पर होते है। परन्तु लगातार कई वर्षो के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सीधी बुवाई में भी इसका नियंत्रण एंव प्रबंधन किया जा सकता है। बर्शात कि समय एंव मात्रा का उचित उपयोग किसान करे।

फसल	खरपतवार	खरपतवार नाशक	दर (ग्रा0 सक्रिय तत्व)	उत्पाद (मि0ली0ग्रा0 / हे0)	उचित समय
धान	सभी प्रकार के खरपतवार	ग्लाइफोसेट (राउण्ड अप, ग्लाइसेल)	1000–1500	–	10 दिन बुवाई से पूर्व
	दुब, मोथा, जंगली चौलाई, भंगरा, कर्मी	पेण्डीमेथिलीन (स्टाम्प, पेण्डीस्टार)	1000	33.33	बुआई के 3–5 दिन के अंदर
		विश्पायरीबैक सोडियम (एडोरा नामिनिगोल्ड)	25	250	बुवाई के 20–25 दिन के बाद
गेहूँ	सभी प्रकार के खरपतवार	ग्लाईफोसेट (राउण्ड अप, ग्लाइसेल)	1000–1500		बुवाई से 10 दिन पहले
	जंगली जई, गेहूँ का मामा, मुटकुइया, कृष्णनील, बथुआ	सल्फोसल्फयूरान (ललकार या लीडर) मेटसल्फयूरान (मेटासी या एलग्रिप)	25 4	33 20	बुवाई के एक महीने बाद

विश्पायरीबैक सेडियम के छिड़काव के 36 घंटे बाद खेत में पानी अवश्य लगाये।

उर्वरक

मिट्टी परीक्षण के आधार पर संतुलित उर्वरकों हरी खाद एंव जैविक खाद का समयानुसार प्रयोग करना चाहिए। सामान्य रूप से सीधी बुवाई वाले धान मे 100–120 किलो नाइट्रोजन, 50 किलो फास्फोरस, 25 किलो पोटाश तथा प्रत्येक तीन वर्ष पर 25 किलो जिंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार गेहूँ में 120 किलो नेत्रजन, 60 किलो फास्फोरस तथा 40 किलो पोटाश अनुशंसित है। बुवाई के समय चूकि सिर्फ दानेदार उर्वरक ही प्रयोग में लाये जाते है अतः नाइट्रोजन एंव पोटाश को बुआई के लगभग एक महीने बाद अत्यधिक कल्ले निकलने की अवस्था एंव गाभा आने के समय बराबर बराबर हिस्सों में बॉटकर प्रयोग करना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

शोध द्वारा यह पाया गया है कि इस विधि द्वारा धान गेहूँ लगाने पर लगभग 30–40 प्रतिशत पानी की बचत होती है। बुवाई के समय खेत में नमी की आवश्यकता होती है इसके बाद धान मे 10–15 दिन बाद हल्की सिंचाई तथा उसके बाद 2–3 से0 मी0 पानी खेत में रहना चाहिए जिससे अधिक कल्ले निकलते है एंव खरपतवार कम निकलते है। दाने बनने के बाद खेत मे पानी की जरूरत नही होती है। पूर्वी चम्पारण मे यह देखा गया है कि बलुई दोमट मिटटी होने की वजह से उपरी जमीन मे पानी की आवश्यक्ता होती है इसलिए किसानो को हमेशा यह सलाह दी जाती रही है कि सिंचित जगह, मध्यम जमीन तथा निचली जमीन मे ही धान की सीधी बुवाई करे। गेहूँ में तीन सिंचाई प्रथम 21 दिन पर, दूसरी 40–45 दिन पर तथा तीसरी दानो में दुग्ध बनते समय दिया जाना चाहिए।

सीधी बुआई तकनीक से लाभ

- 20–25 प्रतिशत पानी की बचत
- समय पर बुवाई
- लागत र्खच कम
- मिट्टी की उर्वरा शक्ति मे वृद्वि
- खरपतवार की समस्या में कमी
- उपज अधिक
- उर्जा एंव ईधन की बचत
- मृदा की भौतिक तथा जैविक दशा में सुधार

जीरो टिलेज को बढावा देने हेतु कृषि विज्ञान केन्द्र, पीपराकोठी, पूर्वी चम्पारण द्वारा किये गये प्रयासः

वर्ष	जीरो टिलेज प्रशिक्षित किसान	जीरो टिलेज प्रत्यक्षण	जीरो टिलेज प्रक्षेत्र दिवस
2009	20	25	–
2010	100	52	10
2011	150	65	6
2012	265	72	4
2013	900	105	5
2014	–	–	3

जीरो टिलेज द्वारा उपज (प्रति हे0) पर प्रभाव (प्रतिशत में)

वर्ष	धान	गेहूँ
2010	5.0	5.0
2011	7.50	8.21
2012	7.20	8.90
2013	8.30	10.86

सहभागी धान - गया जिले के लिए वरदान

सुरेन्द्र चौरसिया, गोविन्द कुमार, रणजीत कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र, गया (बिहार)

विश्व की तीन अरब जनसंख्या का मुख्य आहार चावल है। चावल की खेती विभिन्न जलवायु एवं पारिस्थितिकी में की जाती है। जिसमें सिंचित से लेकर बरानी एवं नीचली जमीन से लेकर ऊपरी जमीन तक में खेती की जाती है। विश्व की खेती के क्षेत्रफल का लगभग 38% वर्षा आधारित तथा उत्पादन योगदान 21% है। भारत में यह क्षेत्रफल 14.4 मिलियन हे0 (वर्षा आधारित निचली जमीन) तथा 6.3 मिलियन हे0 (ऊपरी जमीन) है। कुल 20.7 मिलियन हेक्टेयर में 16.2 मिलियन हेक्टेयर पूर्वी भारत का भू–भाग है जो कि विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित होती है। जिसमें से सूखा एक प्रमुख कारण है। पिछले चार वर्षों में तीन बार जुलाई तक वर्षा अप्रर्याप्त हुई, परिणामतः धान की अन्य प्रजातियाँ की रोपाई प्रभावित हुई। लेकिन सहभागी धान का सूखा रोधी प्रवृत्ति किसानों को 16–20 अगस्त तक रोपाई के बावजूद 40–45 कु0/हे0 की उत्पादन क्षमता ने किसानों के चेहरे पर खुशी ला रहा है। पूर्वी भारत का उत्पादन ही क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा का आधार है। धान की उत्पादन इन सूखा प्रभावित क्षेत्रों में कम एवं अस्थिर रहती है। आज की ज्यादातर प्रजाातियाँ जो प्रचलन में है, उत्पादकता की दृष्टि से विकसित की गयी है। जिसमें पानी अधिक लगता है लेकिन यदि एक भी सिंचाई की कमी हो गयी तो उत्पादन में काफी गिरावट आ जाती है। इस समस्या को ध्यान में रखकर सहभागी धान (IR 74371-70-1-1) का विकास किया गया जिसमें IR55419-04 X के सशरय के क्रास से निकाली गयी है। इस प्रजाति के विकास में अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान, मनीला (फिलीपिंस) तथा वर्षा आश्रित उपरी जमीन हेतु केन्द्रीय धान अनुसंधान केन्द्र, हजारीबाग के सहयोग से विकसित किया गया है। यह प्रजाति निचली जमीन से लेकर उपरी जमीन तक, सिंचित से लेकर असिंचित अवस्था तक उत्पादन देने में समर्थ है। पूर्णतः सूखा के समय भी 10–15 कु0 तक उत्पादन क्षमता रखती है।

धान की खेती में पानी की आवश्यकता

विभिन्न अवस्था	कदवा विधि में सिंचाई की आवश्यकता (mm)	वर्षा आधारित ऊपरी जमीन हेतु (mm)
जमीन तैयारी	250	100
वाणिज्यीकरण	1200	500
रिसाब	700	300
मध्य समय जल बहाव	100	50
योग	2250	950

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि वर्षा आधारित खेती भर की ही वर्षा खरीफ मौसम में गया जिले में हो पाती है। गया जनपद में औसत खरीफ वर्षा 694 mm तक होती है। जबकि वार्षिक औसत 944 mm है।

इसके बावजूद सूखा अवरोधी प्रजातियों के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया। ज्यादातर प्रजाातियों जैसे IR36, IR64, सरजू 52, सम्भा–सहसूरी की ही खेती ऐसी परिस्थिति में की जाती थी जो कि सिंचित क्षेत्रों के लिए विकसित की गयी थी। सूखा काल में ये प्रजातियाँ किसानों का साथ छोड़ देती थी। लेकिन किसानों को ऐसी प्रजाति की आवश्यकता थी जो अच्छी वर्षा की स्थिति में अच्छा उत्पादन एवं सूखा की स्थिति में भी कुछ अच्छा उत्पादन देने में सक्षम हो।

इस प्रजाति के विस्तार में कृषि विज्ञान केन्द्र, गया द्वारा पहल की गयी और दिनों–दिन इसके क्षेत्रफल में वृद्धि होती जा रही है।

वर्ष	प्रदर्शन क्षेत्रफल (ha)	किसानों के संख्या	किसानों से किसानों द्वारा विस्तार क्षे0 (हे0)
2012	5.0	13	
2013	5.0	13	50
2013	100.0 (IRRI/NSFM)	250	500
2013	100.0(Bill Gates and Milinda Gates Foundation)	250	500
2014	5.0	13	60
2014	30.0 (IRRI/NSFM)	76	100
2014	240.0 (DAO, Gaya)	600	500

इन प्रत्यक्षण के अन्तर्गत किसानों को उत्पादन तकनीक/सुरक्षा तकनीक पर कई प्रशिक्षण केन्द्र पर दिये गये। प्रदर्शित प्लाट या स्वयं से लगाये गये प्लाट के किसी भी किसान का कोई शिकायत नहीं प्राप्त हुआ। इससे यह प्रतीत होता है कि यह प्रजाति किसानों के बीच अपना स्थान बनाती जा रही है। साथ ही साथ धान की रोपाई मशीन से करने हेतु भी

प्रेरित किया जा रहा है ताकि किसानों के प्रक्षेत्र में प्रति वर्गमीटर 40–45 हिल तथा 400–500 बालियाँ पैदा हो सके। साथ ही साथ कृषकों की प्रतिक्रिया जानने के लिए प्रक्षेत्र दिवस का भी आयोजन किया गया।

इसके बीज की बढ़ती मांग को देखते हुए कृषि विज्ञान केन्द्र अपने प्रक्षेत्र पर आधारीय बीज का उत्पादन लगातार कर रहा है। साथ ही साथ कृषकों को भी बीज उत्पादन हेतु प्रेरित किया जा रहा है।

वर्ष	आधार बीज क्षेत्रफल (ha)	उत्पादन (कु0)
2012	1.0	33 (सूखा की स्थिति)
2013	20.	65 (सूखा की स्थिति)
2014	2.0	80 अनुमानित (पर्याप्त वर्षा)

इसके अतिरिक्त कृषकों के प्रक्षेत्र पर भी बीज उत्पादन (सहभागी धान) प्रगति पर है और लगभग 15 किसानों के 20 हेक्टेयर प्रक्षेत्र पर बीज उत्पादन कार्य चल रहा है। जिसे अभिसंस्करण कराया जा चुका है। उपरोक्त बीज बिहार राज्य बीज निगम द्वारा क्रय किया जाएगा तथा वर्ष 2015 में और क्षेत्रफल में वृद्धि हो जाएगी।

धान प्रजाति सहभागी के विस्तार एवं कृषकों के बीच प्रसिद्धि का करण–

1. सूखा जैसी विपरीत परिस्थिति के बावजूद किसान अच्छा उत्पादन प्राप्त कर रहा है।
2. यह प्रजाति अन्य प्रचलित प्रजातियों से कई सप्ताह पहले कट जाती है। जिससे रबी की बुआई प्रभावित नहीं होती है तथा खाने के लिए समय से पहले अपना उत्पादन प्राप्त हो जाता है।
3. कुछ किसान धान काटने के बाद सब्जियों की भी खेती कर पा रहे हैं।
4. कम पानी की आवश्यकता की वजह से इस प्रजाति की उत्पादन लागत कम हो जाती है।
5. किसानों द्वारा अच्छे स्वाद एवं मिठास के कारण खाने में भी प्रयोग किया जाता है।
6. सभी किसान आगे साल की बुवाई हेतु बीज सुरक्षित रख लेते हैं तथा अपने इष्ट मित्रों को प्रदान कर देते हैं।
7. धान में पर्याप्त लम्बाई होने के कारण पशुओं हेतु चारा भी पर्याप्त उपलब्धता हो जाता है।

8. लम्बाई के कारण इसका (पुआल) प्रयोग घरों, छप्परों में भी किया जाने लगा है।

इतनी खूबियों के साथ यह प्रजाति (सहभागी) उपरी/निचली जमीनों में जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है किसानों के खाद्य सुरक्षा का हथियार है। इस प्रकार वर्षा आश्रित क्षेत्रों में जहाँ वर्षा नहीं होती या दो वर्षा के बीच ज्यादा अन्तराल, फसल की नर्सरी, बढ़वार और बाली निकलते समय सूखा का ज्यादा असर परिलक्षित होता है। ऐसी परिस्थिति में सहभागी धान के अलावा अन्य सूखा अवरोधी प्रजाति जैसे शुष्क सम्राट, सी.आर.धान 40, अन्जली, वन्दना, प्रभात, तुरन्ता, इन्दिरा, अर्धजल, इत्यादि प्रजातियाँ को प्रमुखता दी जानी चाहिए ताकि असामयिक वर्षा बन्द होने की स्थिति में भी उत्पादन लिया जा सके।

यदि आप सौ लोगो को नहीं खिला सकते तो एक को ही खिलाइए।

– मदर टेरेसा

कम लागत वाले दूध छुड़ाने वाले खाद्य (Weaning Food) का प्रोन्नयन

विकाश राय

कृषि विज्ञान केन्द्र, उत्तर दिनाजपुर (पश्चिम बंगाल)

पृष्ठभूमि

उत्तर दिनाजपुर जिले में 0 से 5 वर्ष की आयु वर्ग के बालकों में कुपोषण की एक गंभीर समस्या है। जिला परियोजना कार्यालय, आई.सी.डी.एस., उत्तर दिनाजपुर के आंकड़ों के अनुसार जिले के आंगनवाडी केन्द्रों के 3,737 सदस्यों के पास पंजीकृत लगभग 10 प्रतिशत बच्चे कम वजन से ग्रसित हैं जिन्हें **"रेड चिल्ड्रन"** कहा जाता है। हालांकि, समेकित बाल विकास सेवा (आई.सी.डी.एस.), उत्तर दिनाजपुर अपने 3,737 सेवा केन्द्रों के माध्यम से बच्चों को **"अनुपूरक पोषण"** सहित विभिन्न सेवाएं प्रदान करता है, तथापि स्थिति में समग्र रूप से सुधार लाने के लिए पुनः हस्तक्षेप करने की जरूरत है।

इस गंभीर स्थिति को ध्यान में रखते हुए तथा समुदाय के एक बड़े वर्ग की गरीब आर्थिक स्थिति पर विचार करते हुए उत्तर दिनाजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा अपनी स्थापना के समय से ही ऑन–फार्म परीक्षणों की अपनी अधिदेशित गतिविधियों के माध्यम से स्थानीय रूप से उपलब्ध संघटकों (गेहूं, मक्का, कूट्, मूंग, मूंगफली, ड्रमस्टिक की पत्तियां आदि) का उपयोग कर विभिन्न कम लागत वाले दूध छुड़ाने वाले पोषणिक खाद्य (Weaning Food) के प्रोटोकॉल विकास (मानकीकरण) हेतु तेजी से गतिविधियां चलाई गई हैं। अनेक वर्षों के कड़े परीक्षणों के उपरान्त उत्तर दिनाजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र कम लागत वाले दूध छुड़ाने वाले खाद्य के अनेक फार्मूलेशन को विकसित करने और उनका मानकीकरण करने में समर्थ बन सका। आहार फार्मूलेशन के कैलोरी मापन तथा पोषणिक मान की जांच सी.एफ.टी.आर.आई., मैसूर में की गई । सभी आहार फार्मूलेशन द्वारा राष्ट्रीय मानकों के अनुसार कैलोरी मापन और पोषणिक मान के मानदण्डों को पूरा किया गया।

तकनीकी का प्रोन्नयन

ऑन–फार्म परीक्षणों के माध्यम से आहार फार्मूलेशन के मानकीकरण के उपरान्त उत्तर दिनाजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा स्व–सहायता समूहों के सदस्यों और आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान किया गया जिसके अंतर्गत उनमें क्षमता निर्माण एवं जागरूकता सृजन, अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन, केस अध्ययन, जागरूकता अभियान एवं खेत दिवस आदि को शामिल कर इस प्रौद्योगिकी को व्यापक स्तर पर अपनाने का कार्य प्रारंभ किया गया। कृषि विज्ञान केन्द्र से प्रशिक्षण हासिल कर तीन स्व–सहायता समूहों ने कृषि विज्ञान केन्द्र की सीधी निगरानी में कम लागत के दूध छुड़ाने वाले खाद्य का उत्पादन

प्रारंभ किया जिसे स्थानीय मेला, ग्रामीण हाट, कृषि मेला, स्वःनिर्भर मेला, कन्याश्री मेला, सबला मेला आदि में **"शिशु आहार"** के नाम से बेचा गया। इसके परिणामस्वरूप शिशु आहार को व्यापक लोकप्रियता मिली और यह संसाधनहीन परिवारों के बीच पसंद किया जाने लगा।

व्यापक स्तर पर अंगीकरण

विभिन्न मंचों तथा बैठकों में बाल स्वास्थ्य विकास में कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा विकसित किए गए विभिन्न कम लागत के पौष्टिक दूध छुड़ाने वाले खाद्य फार्मूलेशन के परिणामों के सामने आने पर उत्तर दिनाजपुर जिला प्रशासन ने उत्तर दिनाजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा विकसित कम लागत के दूध छुड़ाने वाले पौष्टिक खाद्य को एक परियोजना नामतः **"पुष्टि"** में शामिल करने का निर्णय किया। पुष्टि परियोजना जिले के स्व–सहायता समूह नेटवर्क के माध्यम से स्कूली शिक्षा प्रारंभ करने से पहले कुपोषित बच्चों को अतिरिक्त पोषणिक अनुपूरक प्रदान करने की एक पहल है। प्रशासन द्वारा यह निर्णय किया गया कि कुपोषित कम वजन वाले बच्चों **(रेड चिल्ड्रन)** को प्रति सप्ताह दूध छुड़ाने वाले खाद्य का 500 ग्राम का एक पैकेट दिया जाएगा जिससे बच्चों को उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए पर्याप्त कैलोरी मात्रा मिल सकेगी। जिला प्रशासन का विचार इस परियोजना को स्वतः सहायतार्थ समूह नेटवर्क के माध्यम से स्कूल में प्रथम प्रवेश से पहले बच्चों को **"अतिरिक्त पोषणिक अनुपूरक की आपूर्ति कर"** एक सम्यक दृष्टिकोण में लागू करने का है ताकि शिशु स्वास्थ्य में सुधार होने के साथ–साथ **प्री–स्कूल नामांकन** में भी वृद्धि होगी। वहीं दूसरी ओर परियोजना को लागू करने में स्व–सहायता समूह के गरीब सदस्यों के लिए **"रोजगार अवसर"** पैदा हो सकेंगे।

आर्थिक आशय

डीपीओ, आईसीडीएस के नवीनतम आंकडों के अनुसार जिले के दस आईसीडीएस ब्लॉकों में लक्षित समूह यथा "अत्यंत कम भार वाले (0–5 वर्ष) के बच्चों जिन्हें "रेड चिल्ड्रन" कहा जाता है, की संख्या 3,007 है। जैसा कि अनुमान है, प्रति सप्ताह प्रत्येक बच्चे को 500 ग्राम का "अतिरिक्त पोषणिक अनुपूरक" की आपूर्ति करने के लिए कुल 3007 बच्चों हेतु 3007 पैकेट × 500 ग्राम = 1503.5 किग्रा प्रति सप्ताह दूध छुड़ाने वाले खाद्य (Weaning Food) की आवश्यकता है।

इस के लिए प्रति माह 6,014 किग्रा (12,028 पैकेट) तथा प्रति वर्ष 72,168 किग्रा (1,44,336 पैकेट) की आवश्यकता है। जिला प्रशासन द्वारा वीनिंग फूड की लागत रूपये 60.00 प्रति किग्रा. निर्धारित की गई है। अतः कुपोषित बच्चों के लिए वीनिंग फूड अनुपूरक तैयार करने और उसकी आपूर्ति करने के लिए जिला प्रशासन द्वारा 10 स्व–सहायता समूहों के माध्यम से 72,168 किग्रा. × रूपये 60.00 यथा रूपये 43,30,080 के कुल राजस्व पर विचार किया जा रहा है। उत्पादन की कुल लागत पर 20 प्रतिशत के लाभ को मानते हुए रूपये 8,66,016 की राशि चयनित स्व–सहायता समूहों को अर्जित हो रही है।

अंतिम समय के कियान्वयन में कृषि विज्ञान केन्द्र की अतिरिक्त भूमिका

जैसा कि जिला प्रशासन द्वारा अनुरोध किया गया है, उत्तर दिनाजपुर कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा कम लागत के दूध छुड़ाने वाले खाद्य (Weaning Food) को तैयार करने में प्रत्येक आईसीडीएस ब्लॉक के स्व–सहायता समूह के इच्छुक सदस्यों को व्यवहारिक प्रशिक्षण प्रदान करने तथा साथ ही उन्हें विनिर्देशों के अनुसार वीनिंग फूड की स्वच्छता एवं गुणवत्ता बनाए रखने के प्रति संवेदनशील बनाने में संसाधन केन्द्र के रूप में भी कार्य करेगा।

महान सपने देखने वालों के महान सपने हमेशा पूरे होते हैं।

– अब्दुल कलाम

वर्मी बैग का उपयोग करके वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन

प्रबीर कुमार गांगूली

कृषि विज्ञान केन्द्र, मालदा (पश्चिम बंगाल)

मालदा कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा प्रशिक्षण दिए जाने के उपरान्त श्री राजेन्द्र कुमार मण्डल, गांव – ब्रोजोलालटोला, पो.आ.– मानिकचक, जिला – मालदा, पश्चिम बंगाल ने वर्मी बैग का इस्तेमाल करते हुए वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन करना प्रारंभ किया। श्री मण्डल बाढ़ से प्रभावित क्षेत्र के निवासी हैं और साथ ही एक अच्छे सब्जी उत्पादक किसान भी हैं। भयंकर बाढ़ के कारण इनका पुराना ढांचा बह गया। इसलिए श्री मण्डल वर्मी बैग में जैव उर्वरकों का उत्पादन करने में इच्छुक थे क्योंकि यह तरीका लाने ले जाने में वहनीय होता है।

उत्पादन

1.	बैग का आकार	:	4 फीट × 8 फीट × 3 फीट
2.	उत्पादन	:	2 बार में 18 क्विंटल
3.	स्वयं की खपत	:	10 क्विंटल
4.	बेची गई मात्रा	:	8 क्विंटल
5.	प्रति किग्रा. बिक्री मूल्य	:	रूपये 5.00
6.	लाभ	:	रूपये 4,000/–

वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग टमाटर, बैंगन, मिर्च, बंदगोभी तथा फूलगोभी आदि जैसी सब्जियों में किया जाता है। अपने कार्य के प्रदर्शन को देखने के बाद श्री मण्डल वर्मी बैग की अधिक संख्या के साथ जैव उर्वरक उत्पादन बढ़ाने के प्रति इच्छुक हैं।

वर्मी बैग में वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन

कृषि एवं ग्रामीण विकास में कृषि विज्ञान केन्द्र का योगदान

शम्भु राय

कृषि विज्ञान केन्द्र, शेखपुरा (बिहार)

भारत में कृषि जीवनयापन का एक साघन और शैली रही है और आज भी जनसाधारण के लिए यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण जीवनयापन साधन है। फसलों की उत्पादकता में सुधार लाने के उद्देश्य से हरित क्रांति आरंभ की गई थी। हरित क्रांति इसलिए संभव हुई क्योंकि विस्तार प्रणाली व्यापक रूप से इधर–उधर बिखरे तथा विभिन्न प्रकार के कृषक समुदाय को उपयुक्त प्रौद्योगिकियों तथा सही फसल प्रणालियों का व्यापक रूप से प्रचार–प्रसार करने में सफल रही है। कृषि विकास के लिए सतत् प्रयासरत देश की कृषि की सबसे ऊँची संस्था ''भारतीय कृषि अनुसांधन परिशद'' विभिन्न तकनीकी हस्तान्तरण कार्यक्रमों को एकीकृत कर वर्ष 1974 से जिला स्तर पर कृषि विज्ञान केन्द्र (फार्म साइन्सेज सेन्टर) के रूप में चला रही है। कृषि विज्ञान केन्द्र तकनीकी हस्तान्तरण, कृषक प्रशिक्षण, कौशल विकास तथा ग्रामीण युवक–युवतियों के लिए स्वरोजगारोन्मुखी बनाने का नोडल केन्द्र है। इस प्रकार यह किसानों के लिए ज्ञान का ए0 टी0 एम0 है। भारतवर्ष में अभी 642 कृषि विज्ञान केन्द्र जिला स्तर पर स्थापित हैं तथा कई जिलों में एक से अधिक की संख्या में है। बिहार राज्य में 38 कृषि विज्ञान केन्द्र कार्यरत है।

कृषि विज्ञान केन्द्र गांवों में प्रतिभागिता मूलक (PRA) आयोजन करता हैं जिसमें सभी सदस्य योगदान देते है तथा समस्या–समाधान या निर्णय–निर्माण के संबंध में विचारों तथा कार्यकलापों के अंतः परिवर्त्तन से प्रभावित होते हैं। यह एक सशक्त बनाने वाली प्रक्रिया भी है जो स्थानीय लोगों को स्वविश्लेषण करने में, कमान संभालने में, विश्वास पाने में, अपने निर्णय लेने में, योजना बनाने में और कार्यवायी करने में भी सहायता प्रदान करती है। यह मांग चालित कृषि विस्तार के लिए और सरकारी संगठनों, कृषक संगठनों, सहकारियों, कारपोटेट क्षेत्र और पैदा तकनीशियनों को प्रोत्साहन देता है। यह कृषि उत्पादकता व लाभ में वृद्धि करने के लिए वैज्ञानिक सुविधा तथा फील्ड स्तर की सुविधा के बीच के अंतराल को कैसे पाटा जाय गांवों में कुशल गांव प्रदान करने के लिए प्रशिक्षण और लैब टू लैन्ड प्रदर्शन करता है। यदि हम इन सबों को किसानों की मांगो और कृषि विज्ञान केन्द्र के कार्यों को निम्नलिखित परिप्रेक्ष्य में जोड़कर देखें तो कृषि एवं ग्रामीण विकास में कृषि विज्ञान केन्द्र के योगदान की सार्थकता झलकती है। कृषि विज्ञान केन्द्र निर्णय लेने में किसानों को मदद करता है।

कृषकों की निर्णायक आवश्यकतायें:

(क) तकनीकी का चयन एवं प्रबंधन, (ख) उपलब्ध संसाधनों का व्यापक लाभ हेतु प्रबंधन, (ग) कब और कैसे कृषि पद्धतियों का परिवर्तन करें, (घ) किन उत्पादों का बाजार में मांग तथा, (च) अपने उत्पादों को

कब बेचें एवं कब आवश्यक उत्पादनों को खरीदें, (छ) स्वयम् तथा सदस्यगण की पूर्णकालिक उपयोगिता, (ज) सामूहिक रूप से संसाधनों के उपयोग का निर्णय, (झ) अधिक प्रचलित एवं सत्यापित तकनीकों की जानकारी एवं उपयोग, (ञ) समय से कृषि कार्य हेतु ऋण एवं संसाधन प्राप्त करने के तरीके।

वैज्ञानिक–विस्तार–कृषकों का आपसी लगावः

वैज्ञानिक–विस्तार–कृषकों के बीच प्रभावशाली सम्पर्क सुनिश्चित करने की दिशा में कृषि विज्ञान केन्द्र का अहम योगदान रहता है।

(क) यह कृषकों तथा कृषक समूहों की समस्याओं, नई पद्धतियों एवं तकनीकों के बारे में उनके अनुभव को एकत्र करता है।

(ख) इन सूचनाओं का शोध स्वयम् एवं विश्वविद्यालय को प्रेषित कर शोध एवं प्रशिक्षण के लाभकारी परिणामों को उपयोगी बनाता है।

(ग) कृषकों को सहकारिता एवं कृषक संघ जैसे संगठनों की स्थापना एवं प्रबंधन कार्य की शिक्षा देता है।

(घ) अपने जिला में अन्य एजेन्सियों को भी प्रशिक्षण एवं परामर्श प्रदान कर कृषि विकास में सहयोग करता है।

कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए कृषि विस्तार में योगदानः

ग्रामीण विकास के अन्तर्गत लोगों का समग्र विकास यथा–सामाजिक, आर्थिक एवं कृषि विकास आता हैं। इसे कृषि, बागवानी, पशुपालन एवं गब्य विकास, मत्स्यपालन, वन विभाग, रेशम उत्पादन, ग्रामीण अभियंत्र एवं ग्रामीण कुटीर उद्योग आदि के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं लेकिन, इस विकास से वे लोग दूर हैं जो दूर–दराज में रहते हैं लेकिन ग्रामीण व्यवसाय पर आधारित क्रिया–कलाप से आय अर्जित करते हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र विभिन्न क्षेत्रों में लोगों को प्रशिक्षण के द्वारा इस योग्य बनाता है कि वह ज्यादा आय प्राप्त कर जीवन स्तर को ऊपर उठावें तथा स्थानीय संगठनों को बढ़ावा देकर ग्रामीण समुदाय को सशक्त करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

प्रशिक्षण के द्वारा ज्ञान एवं कार्यदक्षता विकसित करनाः

कृषि विज्ञान केन्द्र मानव संसाधन विकास के लिए वांछित कृषि ज्ञान को प्रभावी ढ़ंग से कृषकों तक पहुँचाने का जिला स्तर पर एकमात्र संस्थान है। यहाँ के विषय वस्तु विशेषज्ञ महिला एवं पुरूष कृषक, युवक–युवतियों, उद्यमियों तथा राज्य सरकार के प्रसार कार्यकर्त्ताओं एवं अन्य संस्थानों के द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देकर प्रभावी तकनीकी हस्तान्तरण को सुनिश्चित करता हैं।

उद्यमिता विकास में योगदानः

कृषि विज्ञान केन्द्र स्थान आधारित उद्यमिता यथा–मधुमक्खी पालन, बकरी पालन, मुर्गी पालन, मछली

पालन, बटेर पालन, सुअर पालन, मशरूम उत्पादन आदि उद्यमिताओं हेतु ग्रामीणों का कौशल विकास करने में कृषि विस्तार कर योगदान देता है।

कृषकों के खेतों पर उनके सहयोग से अनुसंधानः

कृषकों के खेतों में उनकी भागीदारी से अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण एवं ऑन फॉम टेस्टिंग द्वारा तकनीकी का निर्धारण, शुद्धीकरण एवं क्षमता प्रदर्शन करता है जो नये ज्ञान को किसानों में लाने में योगदान करता है।

अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण के द्वारा तकनीक की विश्वासनीयताः

कृषि विज्ञान केन्द्र किसानों के खेतों पर अग्रिम पंक्ति प्रत्यक्षण कर नई तकनीक की उत्पादकता एवं क्षमता प्रदर्शित करता है जिससे कृषकों में नई तकनीक की विश्वासनीयता बढ़ती है। यह कृषकों एवं विस्तार कार्यकर्त्ताओं की फसल उत्पादन क्रियायों पर प्रशिक्षित करने का एक अचूक प्लेटर्फाम है। इस नई तकनीक को अधिक से अधिक किसानों द्वारा इस प्रकार अंगीकार करना भी एक विश्वस्त माध्यम है।

अनुशंसित तकनीकों की स्थानीय उपयुक्तता की जाँचः

कृषि अनुसंसाधन संस्थानों द्वारा विकसित तकनीक किसी खास स्थान के लिए उपयुक्त है या नहीं उसकी जाँच किसानों के खेतों पर ऑन फार्म रिसर्च कर करते है तथा लाभदायी परिणामों की अनुशंसा स्थान विशेष के लिए की जाती है। इस विधि से स्थिति विशेष की तकनीकी का प्रमाणीकरण एवं शुद्धीकरण किया जाता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र का सामुदायिक रेडियो में भूमिकाः

सामुदायिक रेडियो प्रसारण की स्थापना एक निश्चित भौगोलिक स्थिति में बसे समुदाय के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास हेतु संचार सहयोग प्रदान करने के लिए किया गया है। कृषि विज्ञान केन्द्रों को इसके संचालन का भार सौपा गया है।

किसान कॉल सेंटरः

किसानों को कृषि संबंधित समस्याओं का तत्काल निवारण हेतु एक टॉल फ्री टेलीफोन नम्बर दिया गया है जिससे कृषि विज्ञान केन्द्र से सम्पर्क कर वैज्ञानिकों से सलाह ले सकते हैं।

किसान चौपालः

जिला के किसी भी गाँवों में कृषि विज्ञान केन्द्र के वैज्ञानिकों का दल जाकर चौपाल कार्यक्रम करता है जिनमें ग्रामीणों को कृषि संबंधित स्थानीय समस्याओं का समाधान एवं मार्गदर्शन किया जाता है। वहाँ उनकी समास्याओं का समाधान हेतु आवश्यकता पड़ने पर ऑन फार्म टेस्ट भी करते है।

मोबाईल सूचना सेवाः

कृषि विज्ञान केन्द्र किसानों को मोबाईल सेवा भी उपलब्ध कराता है। उनके मोबाईल नम्बरों पर एक मिनट के लिए सम–सामयिक तकनीकी सलाह एस0 एम0 एस0 कर भेजता है।

तकनीकी सप्ताहः

कृषि विज्ञान केन्द्र प्रतिवर्ष पाँच दिवसीय तकनीकी सप्ताह मनाकर किसानों को व्यापक रूप से तकनीकी ज्ञान देता है तथा प्रदर्शनों का भी संचालित कर प्रशिक्षित करता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र–एकल खिड़की

कृषि विज्ञान केन्द्रों पर किसान आकर अपनी समस्याओं का समाधान तो करते ही हैं साथ ही साथ संस्थान मे उपलब्ध सामग्री से ज्यादा से ज्यादा सूचना एकत्र करते है, मोबाईल सेवा से समसामयिक तकनीकी ज्ञान प्राप्त करते है। इस प्रकार यह एक एकल खिड़की कही जा सकती है या किसानों के ज्ञान का ए0 टी0 एम0

मौसमीय वेधशालाः

कृषि विज्ञान केन्द्र में मौसमीय वेधशाला स्थापित किया गया है जो पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत है। इसमें अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान, वर्षा जल संग्रही मापन, हवा की गति, सापेक्ष्य आर्द्रता जैसे डाटा संग्रह स्वचालित होता है जिसका कभी भी च्तपदज निकालते हैं। इस वेधशाला के परिणामों को किसानों तक पहुँचाया जाता है तथा मौसम पूर्वानुमान की सूचना का किसानों तक पहुँचाने का प्रयत्न कृषि विज्ञान केन्द्र से किया जाता है।

BGREI योजना का मोनीटरिंगः

कृषि विज्ञान केन्द्र किसानों के इस योजना के अंतर्गत कार्यो में तकनीकी सलाह देने का कार्य तथा मोनीटरिंग करता है।

मृदा परीक्षण प्रयोगशालाः

कृषि विज्ञान केन्द्र में मृदा परीक्षण प्रयोगशाला की स्थापना की गई है जहाँ किसानों के द्वारा खेतों से लाये गए मिट्टी के नमूने की जाँच कर उपलब्ध पोषक तत्वों की जानकारी दी जाती है जिससे की समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में उन्हें आसानी होती है। इन्हें मिट्टी का नमूना लेने की विधि भी बतायी जाती है।

इस प्रकार कृषि विज्ञान केन्द्र के योगदान से कृषि एवं ग्रामीण विकास की उत्तरोतर वृद्धि परिलक्षित हो रही है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबन्धनः आधुनिक कृषि का महत्वपूर्ण आयाम

विनोद कुमार

कृषि विज्ञान केन्द्र, सहारसा (बिहार)

सन 1967 से 1978 की अवधि में संचालित एवं कार्यान्वित की गई हरित क्रांति जो देश की तत्कालीन आवश्यकता थी, हमारे देश की खाद्यान्न आवश्यकता को पूरा करने हेतु एक सफल प्रयास रही है। उच्च उत्पादकता वाली प्रभेदों का खेतों में प्रयोग रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशी/खर–पतवार नाशी दवाओं के प्रयोग और सिंचाई प्रबंधन के द्वारा देश में खद्यान की समस्याओं से निपटनें में हम सक्षम रहे। इस कार्यक्रम के तहत देश में खेती के क्षेत्रफल का विस्तार हुआ। जहाँ तक सम्भव हो सका द्विफसली खेती की प्रणाली को फलीभूत करने में हम सक्षम रहे। उन्नत अनुवांशिकी के प्रयोग द्वारा उच्च गुणवतायुक्त बीजों का प्रयोग हुआ और पौधों से अत्यधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु खेतों में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग हुआ, साथ ही साथ कीटनाशी/खर–पतवार नाशी दवाओं के प्रयोग भी हुए। इस प्रकार एक देश जो अन्नाभाव की समस्या से ग्रसित था, हरित क्रांति के सफलतम प्रयोग द्वारा अन्न निर्यातक देशों की श्रेणी में सम्मिलत हो गया।

लेकिन इस क्रांति के कुछ कुप्रभाव बाद में दृष्टिगोचर होने लगे। रासायनिक उर्वरकों एवं दवाओं के लगातार प्रयोग जो सिंचाई जल के साथ हमारे खेतों की मृदा एवं पूरे पर्यावरण को प्रदूषित करने का कारण भी बना। मृदा में उपलब्ध आवश्यक तत्त्व भी क्षीण होते रहे और हमारे किसान उत्पादन क्षमता को स्थायित्व प्रदान करने के प्रयास के तौर पर उपलब्ध रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुन्ध प्रयोग करते गए। परिणाम स्वरूप मृदा में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ–साथ कार्बनिक प्रदार्थ की मात्रा में भी भारी कमी हुई। ऐसा अनुभव किया जाने लगा कि मात्र रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग द्वारा देश की खेती से प्राप्त उत्पादकता को स्थायित्व प्रदान नहीं किया जा सकता है।

अतः मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन की दिशा में समुचित पहल कर ही उत्पादकता में स्थायित्व लाया जा सकता है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश के अलावा जिंक, बोरॉन, सल्फर जैसे तत्त्वों की कमी मृदा में पाई जाने लगी है। अभी से यदि हम मृदा स्वस्थ्य प्रबंधन की दिशा में अब भी उचित पहल नहीं करते हैं तो सम्भव है कि इनके अलावे और तत्व भी इस सूची में शीघ्र ही सम्मिलित हो जायेंगे।

परन्तु ऐसा नहीं है कि इस दिशा में हमारे देश में वैज्ञानिक पहल नहीं हो रही। अब समन्वित पोषक तत्त्व प्रबंधन द्वारा जहाँ उत्पादकता में स्थायित्व के साथ–साथ हमारे खेतों की मृदा की उर्वरा शक्ति बनी रहे–इस दिशा में भी प्रयास निरन्तर जारी हैं। इसके विभिन्न घटक यथा–कार्बनिक खेती को प्रोत्साहन दिया जाना, रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग, खेतों में अधिक से अधिक मात्रा में जैविक खादों

के प्रयोग तथा जैविक एवं हरी खाद (ढैंचा, मूंग, सनई एवं लोबिया) के प्रयोग द्वारा मृदा स्वास्थ्य संरक्षण का प्रयास जारी है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, सहरसा जिले में हरी खाद का प्रयोग कर खरीफ धान की खेती करने की दिशा में विगत दस वर्षों से प्रयास करता रहा है। खरीफ धान की खती से पूर्व नीचले इलाकों में ढैंचा लगाकर और मध्यम एवं ऊँची भूमि वाले क्षेत्रों में मूंग की फसल लगाकर धान की रोपाई से पूर्व खेतों की मिट्टी में इनके पौधों को दबाकर हरी खाद के रूप में प्रयोग, यहाँ के कृषकों द्वारा किया जाने लगा है। ढैंचा के हरी खाद के प्रयोग से 90 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन खेत की मृदा को प्राप्त होता है, वहीं मूंग से 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन खेत की मृदा में आता है, साथ ही साथ इस फसल से 10–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर दलहन की भी प्राप्ति होती है। हरी खाद का प्रयोग करने से मिट्टी में नाइट्रोजन के साथ–साथ फॉस्फोरस, पोटाश, जस्ता लोहा एवं अन्य पोषक तत्त्वों की उपलब्धता बढ़ती है। चुनायुक्त मिट्टी में नाइट्रोजन का अमोनिया गैस के रूप में बर्बादी होती है। रासायनिक उर्वरकों को जैविक खाद एवं जीवाणु खाद के साथ व्यवहार करने पर धान–गेहूँ एवं धान–रबी मक्का फसल चक्रों में 2 प्रतिशत नाइट्रोजन अमोनिया गैस के रूप में बर्बाद होने से बच जाता है।

कृषि विज्ञान केन्द्र, सहरसा मृदा स्वस्थ्य प्रबंधन की दिशा में केंचुआ खाद (वर्मी कम्पोस्ट) का अधिक से अधिक प्रयोग एवं सब्जियों की खेती में इसके उपयोग पर कृषकों को जागरूक करता रहा है। वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की कमी को पूरा करता है। कृषि एवं पशुओं से प्राप्त कचरा प्रबंधन द्वारा वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन एक सफल एवं समुचित प्रयास सिद्ध हुआ है। जिले में सरकार से प्राप्त सहायता के माध्यम से जहाँ किसान वर्मी बेड का निर्माण कर केंचुआ खाद स्वयं बना रहें हैं, वहीं कुछ किसानों द्वारा व्यवसायिक स्तर पर भी वर्मी कम्पोस्ट का निर्माण किया जा रहा है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन के क्षेत्र में जीवाणु खाद का प्रयोग भी एक अच्छा विकल्प हो सकता है। नील–हरित शैवाल का धान की खेती में प्रयोग से धान की उपज में लगभग 2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की अतिरिक्त वृद्धि होती है वहीं मिट्टी को लगभग 25 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है। उर्वरक के साथ ही एजोस्प्रीलम के प्रयोग से रबी मक्का की उपज में 2 से 3 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की वृद्धि होती है साथ ही मिट्टी को 20 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है। दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर का फसल विशेष के अनुसार प्रयोग, उत्पादकता की वृद्धि में कारगर सिद्ध हुआ है। परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि दलहनी फसलों में राइजोबियम कल्चर के प्रयोग से मिट्टी को 25–30 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है, साथ ही साथ उत्पादित अनाजों के गुणों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। उपचारित दलहनों द्वारा नाइट्रोजन की बड़ी मात्रा भूमि में छोड़ दी जाती है जिसका उपयोग बाद में लगाई जाने वाली फसलों द्वारा किया जाता है। कृषि विज्ञान केन्द्र, सहरसा धान की खेती में नील–हरित शैवाल का प्रयोग, दलहनी फसलों खासकर मसूर की खेती में बीजों का राइजोबियम कल्चर से उपचार एवं खेतों में पी॰एस॰बी॰ के उपयोग पर आधारित प्रत्यक्षण कर जीवाणु खाद के प्रयोग की दिशा में जिले के कृषकों को जागरूक करता रहा है।

ऐसा अनुभव किया जाता है कि खाद्यान्न फसलों की खेती में पूर्णतः कार्बनिक खाद का प्रयोग उत्पादकता को स्थायित्व प्रदान करने में सक्षम नहीं हो सकता। अतः केन्द्र द्वारा सब्जियों की खेती में कार्बनिक खेती की ओर कृषकों को जागरूक किया जाता रहा है साथ ही खाद्यान्नों, दलहनी एवं तेलहनीं फसलों की खेती में समेकित पोषक तत्त्व प्रबन्धन, जिसमें रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक खादों के प्रयोग पर कृषकों को जागरूक किया जाता रहा है। जैविक खाद को रासानिक उर्वरकों के साथ खेती में प्रयोग ताकि रासानिक खादों पर निर्भरता कुछ कम हो, मृदा में उपलब्ध तत्त्व पौधों को समुचित रूप से प्राप्त हों वैसे सूक्ष्म तत्त्व जिनकी पूर्त्ति रासायनिक खाद नहीं करते हों–इस हेतु मृदा में जैविक खाद का प्रयोग आवश्यक है। चुनायुक्त मिट्टी एवं अम्लीय मिट्टी में फॉस्फोरस स्थिर हो जाता है तथा पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता है। जैविक खाद के साथ फॉस्फोरस को धुलनशील बनाने वाले ''फॉस्फोरस सॉलुब्लाइजिंग बैक्टेरिया'' जीवाणु के व्यवहार करने से चुनायुक्त एवं अम्लीय मिट्टी में उपलब्ध फॉस्फोरस की मात्रा बढ़ती है।

रासायनिक उर्वरकों के बाद मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाला कारक रासायनिक कीटनाशी दवाओं का प्रयोग है। प्रारम्भ में रासायनिक कीटनाशी कीटों पर नियंत्रण के अच्छे साधन प्रतीत हुए। परन्तु इनके अवशेष न केवल मिट्टी को बल्कि मानव के लिए हानिकारक सिद्ध हुए। साथ ही साथ जिस मात्रा में पूर्व में दवा प्रयोग की गई, बाद में उस मात्रा में प्रयोग या उस दवा से भी सम्बन्धित कीटों को नियंत्रित करना कठीन प्रतीत हुआ है। इस स्थिति से निजात पाने के लिए समेकित कीट प्रबंधन जिसमें फेरोमॉन ट्रैप का प्रयोग, मित्र कीट की पहचान कर शत्रु कीट विनाश एवं जैविक दवाओं का प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर किया जा सकता है। ट्राइकोग्रामा द्वारा कीट नियंत्रण भी कीटनाशी दवाओं के प्रयोग को कम करने में कारगर सिद्ध हो सकता है। यह एक अत्यन्त सूक्ष्म कीट होता है, जो अनेक प्रकार के शत्रु कीटों पर आक्रमण करता है। यह एक अंड–परजीवी है जो शत्रु कीटों के अंडों में अंडा देकर उन्हें नष्ट कर देता है। इस प्रकार यह एक जैविक कीटनाशी का कार्य करता है जो सिर्फ अपने लक्षित शत्रु कीट को मारता है तथा मानव और पशु स्वास्थ्य पर बिना कुप्रभाव छोड़े पर्यावरण को भी सुरक्षित रखता है। ट्राइकोग्रामा कार्ड को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर शाम के समय पत्तियों के नीचली सतह पर लगा दिया जाता है। नीम की पत्तियों/फली से तैयार, तम्बाकू के डंठल से तैयार कीटनाशी दवायें आज बाजार में भी उपलब्ध है, जिनकी आवश्यकता पड़ने पर कीट नियंत्रण हेतु प्रयोग कर मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन किया जा सकता है। कृषि विज्ञान केन्द्र, सहरसा बिहार सरकार के जिला कृषि एवं उद्यान विभाग के साथ समन्वित रूप से मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन की दिशा में जिले के कृषकों को जागरूक करता रहा है।

मृदा स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों में खर–पतवार नाशी दवाओं का प्रयोग भी एक कारक है। खर–पतवार नियंत्रण की विधियों को मुख्यतः चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–यांत्रिक विधि, सस्य विधि, जैविक विधि एवं रासायनिक विधि। उपरोक्त विधियों का क्रमवद्ध प्रयोग एवं अंतिम विकल्प के रूप में रासायनिक दवाओं का प्रयोग मृदा स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में एक कारगर प्रयास हो सकता है। यांत्रिक विधि के रूप में खर–पतवारों को हाथ से उखाड़ना, गुड़ाई यंत्रों का प्रयोग,

भू–परिष्करण, खेतों में फसल के अनुसार पानी डालकर एवं सतह मल्च जैसी पद्धतियों का प्रयोग होता है। सस्य विधि का मुख्य उद्देश्य होता है–स्वस्थ तथा रोग मुक्त फसलें उगाना, जिससे फसलों के पौधे खर–पतवारों से भली–भाँति संघर्ष कर उन्हें पराजित कर सकें। प्रायः ऐसा पाया गया है कि एक फसल को किसी एक ही खेत में लगातार उगाने से उस फसल में उगने वाले खर–पतवारों की संख्या बढ़ जाती है। विभिन्न प्रकार की फसलें लगाकर इस समस्या को कम किया जा सकता है। बहुत सी फसलें ऐसी होती हैं, जो स्वयं तेजी से फैलती हैं तथा खर–पतवारों को बढ़ने/फैलने का अवसर नहीं देते हैं। चना, अरहर, मूँग आदि ऐसी फसलें हैं जिनके फैल जाने पर उनमें खर–पतवारों की समस्या कम हो जाती है।

खरपतवारों का जैविक नियंत्रण उनके प्राकृतिक शत्रुओं द्वारा किया जाता है। जैविक नियंत्रण का उद्देश्य खर–पतवारों को समूल नष्ट करने का नहीं, बल्कि उनके पौधों की संख्या कम कर देना होता है ताकि उनका प्रभाव मुख्य फसल पर बहुत कम पड़े। कुछ कीटों द्वारा खर–पतवार पूर्णतः नष्ट हो जाते है। जैविक विधि द्वारा खर–पतवार नियंत्रण–कीटों का आकार, खर–पतवारों की संख्या, आक्रमण का ढ़ंग और रोग जनक संक्रमण की क्षमता पर निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर एक हेक्टेयर क्षेत्र में गाजर घास के नियंत्रण के लिए सात से ग्यारह लाख *''द्राइकोग्रामा वाइक्लोराटा''* कीट की आवश्यकता होती है। एक वयस्क बीटल एक गाजर घास के पौधे को छः से आठ सप्ताह में पूर्णतः खा जाता है।

इस प्रकार खर–पतवार नियंत्रण हेतु क्षेत्र विशेष में उगने वाली घसों पर इन विधियों के प्रयोग से ही पहले नियंत्रण का प्रयास किया जाना चाहिए। जो मृदा स्वास्थ्य संरक्षण का एक उचित विकल्प हो सकता है। जिले में किसानों द्वारा यांत्रिक विधियों से खर–पतवार नियंत्रण का प्रयास पूर्व से किया जाता रहा है। परन्तु हाल के वर्षों में इस हेतु रासायनिक दवायों के प्रयोग में भी वृद्धि पायी गई है, जिसे कम कर या यांत्रिक एवं जैविक विधियों को पूर्णतः अपनाकर मृदा स्वास्थ्य संरक्षण किया जा सकता है।

अतः वर्तमान परिपेक्ष में कृषि उत्पादन को स्थायित्व प्रदान करने के प्रयास की दिशा में मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन हेतु जैविक खाद का अधिकाधिक प्रयोग, रासायनिक उर्वरकों का संतुलित प्रयोग एवं रासायनिक दवाओं (कीटनाशी/खर–पतवार नाशी) का युक्ति संगत एवं अंतिम विकल्प के रूप में प्रयोग अतिआवश्यक प्रतीत होता है। कृषि में इस दिशा में यदि अभी से पहल नहीं किया जा सका तो मृदा की उर्वरा शक्ति में ह्रास, मृदा, जल एवं पर्यावरण प्रदूषण एवं अन्नतः फसल उत्पादकता में ह्रास का सामना करना पड़ सकता है। वर्तमान में मृदा में कुछ तत्वों/यौगिकों जैसे–फ्लोराइड्स एवं आर्सेनिक की मात्रा में अधिकता पाई गई है, जिसका फसल के साथ–साथ मानव एवं पशु स्वास्थ्य पर प्रतिकुल प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। इसलिए मृदा स्वास्थ्य संरक्षण के सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाना अतिआवश्यक है, ताकि कृषि उत्पादन में स्थायित्व के साथ–साथ पर्यावरण एवं जल प्रदुषण की समस्या को नियंत्रित किया जा सके।

स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लेकर रहूंगा!

– बाल गंगाधर तिलक

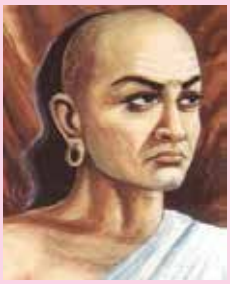

शिक्षा सबसे अच्छी मित्र है। एक शिक्षित व्यक्ति हर जगह सम्मान पता है। शिक्षा सौंदर्य और यौवन को परास्त कर देती है।

– चाणक्य